आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2003

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका

# ड्रीम 2047

सितम्बर 2003 खण्ड 5 अंक 12 मूल्य रुपए : 0.50

## विज्ञान प्रसार समाचार

## विज्ञान प्रसार द्वारा मंगल दर्शन

विज्ञान प्रसार की विज्ञान लोकप्रियकरण गतिविधियों के रूप में मंगल ग्रह के पृथ्वी के निकट आने की घटना को 'मंगल दर्शन' के रूप में आयोजित किया गया। मानव संसाधन विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी और महासागर विकास के केन्द्रीय मंत्री माननीय प्रो. मुरली मनोहर जोशी तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव, प्रो. वी.एस. राममूर्ति ने भी टेलीस्कोप द्वारा मंगल ग्रह का अवलोकन किया।

28 अगस्त 2003 को मालवीय नगर के खिड़की गांव में मंगल दर्शन कार्यक्रम आयोजित किया गया। साथ ही इस अवसर पर व्याख्यान भी दिया गया। इस कार्यक्रम में लगभग 70 लोगों ने भाग लिया। 29 अगस्त 2003 को दक्षिण दिल्ली के साकेत में रात्रि के समय मंगल दर्शन का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न आयु वर्गों के लगभग 200 लोगों ने हिस्सा लिया। 30 अगस्त 2003 को मयूर विहार में मंगल दर्शन का आयोजन किया गया जिसमें करीब 300 लोगों ने हिस्सा लिया। इस मंगल दर्शन कार्यक्रम में टेलीस्कोप द्वारा मंगल दर्शन कराना (श्री भास्कर कार्णिक, फेलो द्वारा) स्लाइडों के जरिए व्याख्यान प्रदर्शन, साथ ही साथ इन्टरनेट द्वारा सजीव चित्रों को दिखाना (श्री कृष्णमूर्ति, परामर्शदाता द्वारा) शामिल था। इससे पहले डीटीईए हायर सैकेन्डरी स्कूल में मंगल ग्रह पर एक व्याख्यान भी दिया गया था।

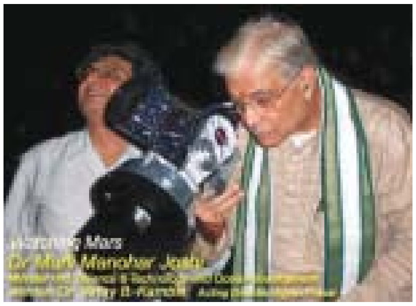


## इस अंक में

संपादकीय

ब्रह्मांड के मूल अवयव (पृष्ठ 3)

बीरबल साहनी (पृष्ठ 11)

इलायची (पृष्ठ 14)

कार्ल फ्रेडरिक गॉस (पृष्ठ 15)

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां (पृष्ठ 18)

## कोलकाता में विज्ञान संचार कार्यशाला

8 व 9 सितम्बर, 2003 को कोलकाता के 'इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस' में विज्ञान प्रसार व 'साइंस एसोसिएशन ऑफ बंगाल' द्वारा संयुक्त रूप से पश्चिम बंगाल व त्रिपुरा में विज्ञान संचार की स्थिति पर दो दिवसीय सेमिनार/कार्यशाला का आयोजन किया गया। संपूर्ण पश्चिम बंगाल एवं त्रिपुरा के लगभग 75 विज्ञान संचारकों/लेखकों ने कार्यशाला में भाग लिया। भागीदारों का स्वागत करते हुए विज्ञान प्रसार के फेलो और कोलकाता आकाशवाणी के पूर्व केन्द्र निदेशक डॉ. अमित चक्रवर्ती ने इस प्रकार की कार्यशाला के आयोजन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला जहां भागीदारों से स्थानीय भाषा में विज्ञान संचार की स्थिति पर संवाद करने की आशा की जाती है। विज्ञान प्रसार का प्रतिनिधित्व करते हुए डॉ. सुबोध महंती ने देश में वैज्ञानिक साक्षरता के प्रसार के लिए विज्ञान प्रसार द्वारा चलायी जा रही गतिविधियों, उसके लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को रेखांकित किया। विज्ञान संग्रहालयों के राष्ट्रीय परिषद के पूर्व महानिदेशक डॉ. सरोज घोष ने अपने संबोधन में कहा कि : ''विज्ञान अब सिर्फ कक्षाओं में पढ़ाया जा रहा है लेकिन वास्तविक विज्ञान कक्षाओं से परे होता है। विज्ञान प्रकृति को समझने की एक प्रक्रिया है। आम जनता में विज्ञान के प्रति सकारात्मक रवैया नहीं है। उनके

*शेष पृष्ठ 18 पर जारी.....*

*(बाएं से दाएं)* डॉ. एस. रॉय चौधुरी (बोलते हुए), डॉ. सरोज घोष, प्रोफेसर ए. के. बरुआ, डॉ. सुबोध महंती और डॉ. अमित चक्रवर्ती

---oSkfud <a lslkpj oSkfud <a lsdja--- oSkfud <a lslkpj oSkfud <a lsdja--- oSkfud <a lslkpj oSkfud---

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से सौरभ प्रिंटर्स प्रा. लि., ए–16, सैक्टर 4, नोएडा–201 301 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ विनय बी. काम्बले

# एड्स की चुनौती

भयावह ह्यूमन इम्यूनो डेफिसिएंसी वायरस (एचआईवी) की खोज 1983 में पेरिस के पाश्चर इंस्टीट्यूट में लूक मॉन्टैग्नर और रॉबर्ट गैलो ने की थी। तब से लेकर अब तक विश्वभर के वैज्ञानिक इस महाव्याधि के लिए इलाज ढूंढ़ने में गहन रूप से प्रयत्नशील हैं। इस समय तक कोई ऐसी औषधि उपलब्ध नहीं है, जो पूर्णतः प्रभावकारी हो। भारत में एचआईवी 1980 के आरंभ से लेकर मध्य तक, बाहर से आया था। यह एचआईवी ही है, जिसके कारण एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिसिएंसी सिन्ड्रोम (एड्स) होता है। भारत में 1986 में एड्स के पहले मामले की पहचान की गयी। तब से, सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में एचआईवी संक्रमण की खबरें आती रही हैं। जबकि एड्स के टीके का विकास अभी भी दुर्ग्राह्य है। जीवन के लिए संघर्ष कर रहे एड्स रोगियों की संख्या लगातार खतरनाक दर से बढ़ रही है। राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको), जो भारत में सभी एड्स नियंत्रण एवं बचाव गतिविधियों को समन्वित करने वाली एक नोडल एजेंसी है, के अद्यतन आंकड़ों के मुताबिक इस समय भारत में 39.7 लाख से भी अधिक लोग एड्स से पीड़ित हैं।

ऐसा एक टीका विकसित करना इतना कठिन क्यों है जो एड्स पर प्रभावशाली तरीके से रोक लगाए? एचआईवी एक आरएनए (राइबोन्यूक्लिइक एसिड) वायरस है, अर्थात् इसका आधारभूत आनुवंशिक पदार्थ आरएनए होता है। डीएनए (डिऑक्सी राइबोन्यूक्लिइक एसिड) और आरएनए वे प्रोटीन हैं जो आनुवंशिक सूचनाओं को वहन करते हैं। शरीर की एक कोशिका आरएनए के माध्यम से डीएनए द्वारा स्वयं की अनुकृति बनाने का कार्य करती है। चूंकि इसके पास कोई स्थानीय डीएनए नहीं होता, इसलिए यह वायरस द्विगुणन के सामान्य क्रम को फुर्ती से उत्क्रमित कर देता है। इस वायरस का आरएनए अपना वायरस संबंधी डीएनए पैदा करने के लिए परपोषी (होस्ट) कोशिका के डीएनए का इस्तेमाल करता है। इसके बाद ही सामान्य द्विगुणन प्रक्रिया प्रारंभ होती है। एक बार परपोषी शरीर के भीतर पहुंच जाने पर एचआईवी प्रमुख रूप से ''टी'' लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स को संक्रमित करता है जो प्रतिरक्षा प्रणाली के मुख्य घटक होते हैं। वायरस पुनर्जनन प्रणाली पर कब्जा कर लेता है और अपने को ही पुनर्उत्पादित करना प्रारंभ कर देता है। कोशिका कमजोर हो जाती है और अंततः मर जाती है, तथा नये बने वायरसों को रक्त प्रवाह में छोड़ देती है। दूसरी श्वेत रक्त कोशिकाओं पर भी आक्रमण होता है और वे भी मर जाती हैं। इस प्रकार शरीर को ट्यूबरकुलोसिस, न्यूमोनिया, मेनिन्जाइटिस और इनसेफ्लाइटिस जैसी 'अवसरवादी' बीमारियों के लिए छोड़ दिया जाता है। पूर्ण रूप से एड्स में बदलने के लिए कुछ वर्षों के लम्बे उद्भवन काल के बावजूद, शरीर को बीमारियों से लड़ने के लिए एंटीबॉडीज़ उत्पादित करने हेतु पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है। यह कैसे होता है? यह इस तथ्य के कारण होता है कि एचआईवी इतनी तीव्र गति से अपने को बढ़ाता है कि जितने समय में एंटीबॉडी तैयार होती है, उतने समय में यह वायरस अपना स्वरूप ही बदल लेता है और एंटीबॉडी अपने लक्ष्य को नहीं पहंचान पाती। यह वायरस रक्त प्रवाह से बाहर निकलकर किसी पोषक कोशिका के डीएनए के अंदर छुपकर या प्रत्यक्षतः एक कोशिका से दूसरी कोशिका में गतिमान होकर जांच प्रक्रिया के दौरान चकमा दे भागता है। बाद वाले मामले में, वायरस के विरुद्ध एक विशेष एंटीबॉडी होने के बावजूद ये दोनों कभी भी एक–दूसरे के सम्पर्क में नहीं आते, जबकि एंटीबॉडीज रक्त में प्रवाहित होते रहते हैं।

एचआईवी कैसे फैलता है? मां से बच्चे को तथा संक्रमित रक्त/रक्त उत्पाद, ऊतकों या अंगों के माध्यम से होने वाले एचआईवी संचरण के अपवाद के साथ, अन्य सभी प्रकार के एचआईवी संचरण सिर्फ उन मानव व्यवहारों के परिणामस्वरूप होते हैं जिसकी वजह से किसी व्यक्ति को एचआईवी संक्रमण का खतरा रहता है। किसी व्यक्ति को एचआईवी संक्रमण के ग्रहण या संचरण के अति जोखिम क्षेत्र में नशीली दवाएं लेने के लिए इंजेक्टिंग उपकरणों को शेयर करना तथा/अथवा अधिकाधिक यौन सहभागियों के साथ असुरक्षित यौन संबंध रखना शामिल है। सिर्फ वे व्यक्ति जो कुछ एचआईवी जोखिम व्यवहारों में संलग्न है या जिनका यौन सहभागी किसी प्रकार के एचआईवी जोखिम व्यवहारों में संलग्न है, यौन क्रिया के माध्यम से एचआईवी संक्रमण के खतरे की चपेट में होते हैं। इसके अतिरिक्त एचआईवी संक्रमण से संबंधित ट्यूबरकुलोसिस का भय भारत में ट्यूबरकुलोसिस संक्रमण की उच्च उपस्थिति के कारण एक प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती है।

भारत में एचआईवी/एड्स का प्रभाव काफी विषमांगी है। एचआईवी महामारी का प्रकोप कुछ दक्षिणी राज्यों में काफी अधिक है, जबकि देश के अधिकांश भागों में संक्रमण की दर काफी कम है। एचआईवी/एड्स का सबसे अधिक प्रभाव महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पांडिचेरी और मणिपुर में महसूस किया जा रहा है। भारत में पहला एचआईवी–पॉजिटिव मामला 1986 में प्रकाश में आया था, तबसे यह वायरस उच्च–जोखिम समूहों, यथा – यौनकर्मियों के घेरे को भी पार कर गया है तथा आम आबादी में प्रवेश कर चुका है। एचआईवी/एड्स से जुड़ा कलंक उन कई समस्याओं में से एक है, जिसका इससे संक्रमित दुर्भाग्यशाली लोग सामना करते हैं। सर्वाधिक चिन्ताजनक संकेत यह है कि एचआईवी संक्रमित गर्भवती महिलाओं की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। एक्टिव रिट्रोवाइरल थेरेपी (एआरटी), जो कि दवाओं का एक संयोजन है, एड्स से संबंधित कुछ संक्रमणों को दूर कर सकती है। हालांकि यह उपचार महंगा होने की वजह से आम आदमी की पहुंच से बाहर है। एआरटी संक्रमित व्यक्ति को एक सामान्य जीवन जीने का अवसर प्रदान करता है, अति तीव्र एड्स को विलम्बित करता है तथा संक्रमित मां द्वारा एचआईवी के संक्रमण को कम करता है। 1996 में ब्राजील ने अपने नागरिकों को एचआईवी/एड्स के लिए मुफ्त चिकित्सा का अधिकार प्रदान किया, और दवा उपभोग को मॉनिटर करने के लिए सामुदायिक कार्यक्रमों द्वारा समर्थित किया, जिससे एचआईवी/एड्स संक्रमित आबादी को पांच लाख तक सीमित करने में सफलता मिली।

नाको ने अनुमान लगाया है कि सिर्फ एक साल में नये संक्रमणों की संख्या में 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। निश्चित रूप से सार्वजनिक जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से बचाव और सार्वजनिक अस्पतालों में उपचार उपलब्ध कराना, एड्स फैलाने वाले इस वायरस को फैलने से बचाने का एकमात्र तरीका है। हालांकि पहले से ही एचआईवी से संक्रमित लोगों की देखभाल करना भी हमारी जिम्मेदारी हैं। हाल ही में, विश्व की सर्वाधिक एचआईवी आबादी वाले देश दक्षिण अफ्रीका ने एचआईवी संक्रमित अपने 50 लाख नागरिकों का सार्वजनिक अस्पतालों में उपचार शुरू करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया है। प्रसंगवश, विश्व में एचआईवी संक्रमित आबादी के मामले में हम दूसरे स्थान पर हैं। तब हम क्या आशा रखते हैं? किसी भी समय संक्रमित लोगों में से सिर्फ करीब 20 से 30 प्रतिशत को ही उपचार की जरूरत होती है, उनके उपचार पर केवल लगभग 4,000 करोड़ रुपए लागत आयेगी जो कि जीडीपी के करीब 0.5 प्रतिशत के बराबर है। यह निश्चित रूप से वहनीय होनी चाहिए।

यह सच है कि ट्यूबरकुलोसिस, मलेरिया और मधुमेह से पीड़ित लोगों की संख्या एचआईवी/एड्स की तुलना में काफी अधिक है तथा इस आबादी की अवहेलना नहीं की जा सकती है। लेकिन किसी प्रकार के उपचार की अनुपस्थिति में, एचआईवी/एड्स एक अलग तरह की चुनौती पेश करता है। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम एक प्रमुख स्वास्थ्य संकट का सामना कर रहे हैं। इसलिए बिना विलम्ब किये हमें ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका के उदाहरण को अपनाने की आवश्यकता है। एचआईवी/एड्स के बारे में जागरूकता फैलाना प्रत्येक व्यक्ति का उत्तरदायित्व है – मेरा भी और आपका भी। हमें इस वायरस के भयंकर रूप धारण करने के पहले ही इसका निरोध करना है।

❑ **विनय बी. काम्बले**

**सम्पादक : विनय बी. काम्बले**
पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार** सी–24 कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
दूरभाष : 26967532, फैक्स : 26965986
ई–मेल : *vigyan@hub.nic.in*
वेबसाइट : *http://www.vigyanprasar.com*

"ड्रीम 2047" में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रुप मे उत्तरदायी नहीं है।

"ड्रीम 2047" मे प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किये जा सकते हैं।

# ब्रह्मांड के मूल अवयव

## क्वार्क्स, ग्लूआंस और लेप्टांस

❑ यू.सी. अग्रवाल एवं एच.एल. निगम

प्रारंभ से ही मनुष्य के मन में पदार्थ की संरचना करने वाली मूल कणिकाओं के बारे में जानने की इच्छा रही है। संभवतः इस बारे में पहला प्रयास एक यूनानी दार्शनिक ने किया था। सबसे पहले ऐटम (परमाणु) शब्द का प्रयोग उसी ने किया था, लगभग उसी समय एक भारतीय वैज्ञानिक कनद ने भी अणु और परमाणु के अस्तित्व की परिकल्पना प्रस्तुत की थी। वे अवधारणाएं केवल सैद्धांतिक मॉडल प्रस्तुत करती थीं। उनमें इन अविभाज्य कणिकाओं को परस्पर बांधे रखने वाली शक्तियों पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया था। लगभग डेढ़ हजार वर्ष तक परमाणु सिद्धांत का विकास अवरुद्ध रहा। सन् 1805 में डाल्टन ने इसे पुनर्जीवित किया और यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि एक ही तत्व के परमाणु एक समान होते हैं जबकि अन्य तत्वों के परमाणु उनसे भिन्न प्रकार के होते हैं। ये परमाणु संयुक्त होकर विभिन्न यौगिकों का निर्माण करते हैं। अणुओं से संबंधित हमारी अवधारणा अब भी वैसी ही है जैसी कि 'अणु' के बारे में कनद ने व्यक्त की थी। प्रकृति में विद्यमान भिन्न–भिन्न प्रकार के 90 तत्व अलग–अलग तरह के 90 परमाणुओं से निर्मित हैं और इन्हीं से संपूर्ण प्रकृति की संरचना हुई है। लेकिन पदार्थ की संरचना और उसके विद्युतीय गुणों के बीच के संबंध को जे.जे. थांसन द्वारा इलेक्ट्रान और रदरफोर्ड द्वारा बिंदु जैसे नाभिकों की खोज किए जाने के बाद ही समझा जा सका। विद्युत–आवेशों की प्रकृति और उनके गुणों को समझने के प्रयास निरंतर जारी रहे। इससे पदार्थ की प्रकृति और कणिकाओं की मूलभूत स्थिति को कुछ और विस्तार से समझा जा सका। सन् 1932 तक इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान को ही मूलभूत कणिकाएं समझा जाता था। इलेक्ट्रान परमाणु के बाहरी भाग का निर्माण करते हैं जबकि प्रोटान और न्यूट्रान नाभिक में स्थित होते हैं। इलेक्ट्रानों और प्रोटानों को एक साथ बांधे रखने वाली शक्ति पूर्णतः वैद्युत–चुंबकीय प्रकृति की होती है, जबकि नाभिक में न्यूट्रान और प्रोटान नाभिकीय शक्ति से बंधे होते हैं। यह शक्ति वैद्युत–चुंबकीय शक्ति की तुलना में 137 गुना प्रबल होती है। इन शक्तियों की प्रकृति के अध्ययन और उच्च ऊर्जायुक्त कणिकाओं के पारस्परिक संघात के दौरान सृजित होने वाली अनेकों प्रकार की कणिकाओं के वर्गीकरण के आधार पर एक क्वार्क्स, ग्लूआंस (सशक्त बलों के कारण होनी वाली पारस्परिक क्रियाओं द्वारा सृजित कणिकाएं) और लेप्टांस युक्त (निर्बल शक्तियों के कारण होने वाली पारस्परिक क्रिया के कारण सृजित) मॉडल प्रस्तावित किया गया। यह मॉडल मूलतः समूह नैरंतर्य (कांटिन्यूनस ग्रुप या लाइ ग्रुप) के सिद्धांत पर आधारित है, और इसमें गणितीय जटिलताओं से मुक्त सरल प्रकृति का प्राथमिक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि यह मॉडल भी पदार्थ की संरचना से संबंधित प्रश्नों का अंतिम उत्तर नहीं है, और संभव है कि इस संबंध में हो रहे कामों से हमें भविष्य में इन कणिकाओं को परस्पर बांधे रखने वाली शक्तियों के और जटिल संबंधों का ज्ञान हो सके।

*मुरे गिल मान*

### नई कणिकाएं

किसी भी प्रणाली के अंदर झांकने की सामान्यतः दो विधियां हैं। पहला तरीका तो यह है कि उपयुक्त प्रकार के विकिरण से उस प्रणाली को किरणित कर उसके अंदर के घटकों को विभेदित किया जाए। दूसरा तरीका यह है कि उस प्रणाली को कुछ उच्च ऊर्जायुक्त कणिकाओं से टकराया जाए, ताकि उसके अंदर उपस्थित घटक बाहर निकल आएं और उनका विश्लेषण किया जा सके। पहली विधि की सीमाएं हैं। इस विधि की सफलता के लिए आवश्यक है कि विकिरण की तरंग दैर्ध्य लक्ष्य–पदार्थ के आकार से छोटी हो। परमाणु के नाभिक का अर्धव्यास $10^{-13}$ सेमी. होता है। रदरफोर्ड कम ऊर्जायुक्त $\alpha$ – किरण विकिरण का प्रयोग कर नाभिक को एक बिंदु के रूप में ही देख सके। दूसरी विधि में पदार्थ को उच्च ऊर्जायुक्त कणिकाओं से टकराया जाता है। इलेक्ट्रानों के आयनीकरण के लिए जितनी ऊर्जा आवश्यक होती है उससे भी अधिक ऊर्जा वाले फोटानों का उपयोग करके इलेक्ट्रानों को परमाणु से उत्सर्जित कराया जाता है और इलेक्ट्रानों के अत्यधिक ऊर्जायुक्त पुंजों का प्रयोग कर प्रोटान और न्यूट्रान की स्थिति निर्धारित की जाती है।

सन् 1930 के लगभग ब्रह्मांडीय किरणों से संबंधित परिघटनाओं में नई प्रकार की कणिकाएं ढूंढ़ी गईं। सन् 1932 में एंडरसन ने पाजिट्रान की खोज की। उसके बाद सन् 1937 में ब्रह्मांडीय किरण–परिघटना में म्युआन की खोज की गई। ऐसे ही अन्य अध्ययनों से अपेक्षाकृत अधिक विभेदक आवेश क्षमता वाली अन्य कणिकाओं के अस्तित्व का प्रमाण मिला। पदार्थ से इन कणिकाओं की पारस्परिक क्रिया की प्रकृति को उस समय तक ज्ञात कणिकाओं के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता था। इससे एक नए विकल्प पर विचार किया गया। इसके अंतर्गत पदार्थ में इन कणिकाओं की प्रेक्षित विभेदन शक्ति की व्याख्या कणिकाओं की एक नई श्रृंखला की उपस्थिति की परिकल्पना के माध्यम से की गई। इस परिकल्पना के अनुसार, इन कणिकाओं पर $\pm e$ आवेश होता है, और इनका परिमाण इलेक्ट्रान के द्रव्यमान पर दो घात लगाने पर प्राप्त होने वाले द्रव्यमान के बराबर होता है। ब्रह्मांड–किरणों के अध्ययन के साथ ही अत्यधिक ऊर्जायुक्त कणिका–पुंज (BeV और GeV) उत्पन्न करने में सक्षम कणिका–त्वरित्रों के विकास और अति संवेदनशनशील प्रकृति के परिष्कृत कणिका संसूचकों के निर्माण से इस दिशा में और प्रगति हुई। इन प्रणालियों की सहायता से किए गए कई प्रयोगों के माध्यम से दो कणिकाओं के बीच अत्यधिक ऊर्जायुक्त टकराव से सृजित होने वाली नई कणिकाएं खोजी गईं। टकराव के कारण निर्मित होने वाली कणिकाओं का द्रव्यमान कई बार कम होता था, जबकि अनेक बार उनका द्रव्यमान टकराने वाली कणिकाओं के द्रव्यमान से अधिक होता था। इस तरीके से अनेक प्रकार की कणिकाओं का सृजन किया गया। इन दिनों भी इन त्वरित्रों द्वारा अधिक से अधिक ऊर्जायुक्त कणिका–पुंजों के सृजन का सिलसिला जारी है। इस तरह इतने प्रकार की कणिकाएं सृजित की गई हैं कि यहां उनकी सूची देना संभव नहीं है। दरअसल इन कणिकाओं को 'कणिका आंकड़ा पुस्तिका' में सूचीबद्ध किया गया है। पुस्तिका को हर दो वर्ष बाद संशोधित करके उसमें ढूंढ़ी गई नई कणिकाओं को भी सूचीबद्ध कर लिया जाता है।

सन् 1960 में एक प्रयोग के दौरान प्रोटानों पर अत्यधिक ऊर्जायुक्त इलेक्ट्रान पुंज को फायर करने पर प्रोटानों के अंदर बिंदु सदृश्य कणिकाओं की उपस्थिति का पता चला। न्यूट्रानों के मामले में भी ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुए। इससे यह निष्कर्ष निकला कि प्रोटान और न्यूट्रान मूल कणिकाएं नहीं हैं। उनके अंदर भी

कई केंद्र उपस्थित हैं।

इन नई कणिकाओं के बारे में और जानकारी प्राप्त करने की उत्कंठा तो वैज्ञानिकों में थी ही, पर उसके साथ ही उनकी उत्पत्ति को लेकर भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि ''आखिरकार ये कणिकाएं आती कहां से हैं?'' बेशक इनकी उत्पत्ति नाभिकीय अभिक्रियाओं से होती है, पर ऐसा तभी हो सकता है जब अतिरिक्त द्रव्यमान सृजित करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा उपलब्ध हो ($E=mc^2$)। उदाहरण के तौर पर यदि अत्यधिक गतिज ऊर्जा से युक्त कोई प्रोटान किसी अन्य स्थिर या गतिशील प्रोटान से टकराता है, तो गतिज ऊर्जायुक्त प्रोटान की गतिज ऊर्जा का कुछ अंश द्रव्यमान में रूपांतरित हो जाएगा और यह रूपांतरित द्रव्यमान $E=mc^2$ के सूत्र के अनुरूप एक $\pi$– मेसान के द्रव्यमान के बराबर होगा।

$$p^* + p = p + p + \pi^0 \qquad (1)$$

$$p^* + p = p + n + \pi^+ \qquad (2)$$

यदि प्रोटान की गतिज ऊर्जा पर्याप्त न हुई तो वह लक्ष्य – प्रोटान से टकरा कर छिटक जाएगा और कोई $\pi$ मेसान सृजित नहीं होगा। इन कणिकाओं के गुणों का अध्ययन करने के बाद इन्हें दो श्रेणियों – कणिकाओं और प्रतिकणिकाओं में वर्गीकृत किया गया। इन श्रेणियों की उपस्थिति का संकेत पाजिट्रान की खोज के समय ही मिल गया था। पाजिट्रान के हर गुण इलेक्ट्रान जैसे ही होते हैं, अंतर केवल विद्युत आवेश का होता है। वस्तुतः अब तक ऐसी किसी कणिका का आस्तित्व खोजा या रचा नहीं जा सका है, जिसकी प्रतिकणिका का भी अस्तित्व न हो। इन प्रतिकणिकाओं का हर गुण अपनी प्रतिकणिका जैसा ही होता है, केवल उनके विद्युत आवेश में अंतर होता है। प्रतिकणिका पर कणिका के विद्युत आवेश से विपरीत विद्युत आवेश होता है। कुछ मामलों में इन प्रतिकणिकाओं के चुंबकीय घूर्णन की दिशा उनके चक्रण की दिशा के विपरीत होती है। न्यूट्रीनो और एंटीन्यूट्रीनो इसके उदाहरण हैं। प्रतिकणिकाएं नाभिकीय अभिक्रियाओं के कारण भी सृजित होती हैं, लेकिन कणिकाओं की उपस्थिति में वे अधिक समय तक अस्तित्व में नहीं रहतीं और नष्ट होकर फोटान के रूप में ऊर्जा प्रदान करती हैं।

एक रुचिकर तथ्य यह है कि सन् 1955 में पहली बार एक ऐसे प्रति परमाणु को सृजित किया गया जिसका नाभिक ऋण आवेशयुक्त था और उसका बाहरी भाग पाजिट्रानों से निर्मित था। न्यूट्रान, फोटान आदि जैसी अनाविष्ट कणिकाओं की भी प्रतिकणिकाएं होती हैं, जिनके द्रव्यमान एवं अन्य कई गुण तो अपनी प्रतिभागी कणिकाओं के समान होते हैं, पर अनेक गुण उनसे विपरीत होते हैं।

तालिका 1 में कुछ कणिकाओं के नाम और उनके गुण दिए गए हैं।

## कणिकाओं का श्रेणीकरण

यद्यपि इन कणिकाओं के बारे में हमारी समझ अब भी अधूरी है, पर उन्हें श्रेणीकृत और क्रमबद्ध करने की दिशा में प्रगति हुई है।

इन कणिकाओं को दूसरे व्यापक श्रेणीकरण के अंतर्गत दो समूहों में बांटा गया है। पहली श्रेणी में फर्मिआन कणिकाएं रखी गई हैं। इनके चक्रण की संख्या अपूर्ण जैसे 1/2, 3/2, 5/2 आदि होती है, और ये कणिकाएं पौली के बहिष्करण सिद्धांत के अनुसार व्यवहार करती हैं। दूसरी श्रेणी में बोसान कणिकाओं को शामिल किया गया है, इनका चक्रण या तो शून्य अथवा पूर्णसांख्यिकीय, जैसे 0, 1, 2..... आदि होता है।

तीसरे व्यापक श्रेणीकरण के अंतर्गत इन कणिकाओं को चार समूहों (1) फोटान (2) लेप्टांस (3) मेसांस (4) बेरांस में विभाजित किया गया है। मेसांस और बेरांस को संयुक्त रूप से हैड्रांस कहते हैं। आगे हम इनके बारे में संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

### (1) फोटान

यह कणिका वैद्युत–चुंबकीय क्षेत्र से संबद्ध तो होती हैं, पर इस पर कोई आवेश नहीं होता। यह द्रव्यमान रहित होती है और प्रकाश की गति से चलती है। इसका कोणीय संवेग एक इकाई (एक इकाई = $h/2\pi$) होता है। इस प्रकार यह कणिका बोसान–कणिकाओं की श्रेणी में आती है, तथा यह पौली के सिद्धांत के अनुरूप व्यवहार नहीं करती है।

### (2) लेप्टांस

लेप्टांस कणिका का चक्रण आधा इकाई ($1/2\,(h)\,/2\pi$) होता है। इस समूह के ज्ञात सदस्य हैं – इलेक्ट्रान ($e^-$), म्युआन ($\mu^-$) और टैआन ($\tau^-$)। इनके न्यूट्रीनो भी इनसे संबद्ध होते हैं, जैसे e - न्यूट्रीनो, ($\nu$❄✍), -$\mu$ न्यूट्रीनो, ($\nu_\mu^-$) और $\tau$-न्यूट्रीनो ($\nu_\tau$-)। इन सभी कणिकाओं की प्रतिकणिकाएं होती हैं। पाजिट्रान ($e^+$), एंटी – म्युआन ($\mu^+$) और एंटी – टैटान ($\tau^+$) तथा उनसे संबंधित एंटी न्यूट्रीनो ($\bar{\nu}_e$, $\bar{\nu}_\mu$, और $\bar{\nu}_\tau$) ऐसी ही प्रतिकणिकाएं हैं। $\mu^-$ और $\mu^+$ के गुण क्रमशः $e^-$ और $e^+$ के गुणों से मिलते हैं। केवल उनके स्थिर द्रव्यमान और अर्ध जीवन अवधि में अंतर होता है। $\mu$ का स्थिर द्रव्यमान इलेक्ट्रान के 207 गुना होता है और उनकी अर्ध जीवन अवधि, यानी क्षरित होकर एक इलेक्ट्रान ($\bar{\nu}_\mu$ और $\bar{\nu}_e^-$) सृजित करने की अवधि $2.2\times10^{-6}$ सेकेंड है।

इस वर्गीकरण का कारण यह है कि ये सभी कणिकाएं निर्बल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं से संबद्ध होती हैं, और इन पारस्परिक क्रियाओं के दौरान उनकी एक क्वांटम संख्या (इसे लेप्टान आवेश भी कहते हैं) = ± 1 बरकरार रहती है। सभी लेप्टानों को +1 लेप्टान संख्या प्रदान की गई हैं, जबकि प्रति लेप्टानों को -1 संख्या प्रदान की गई है। इस प्रकार एक तरह की मूलभूत कणिकाएं दूसरी तरह की मूलभूत कणिकाओं में तभी रूपांतरित हो सकती हैं, जबकि रूपांतरण के दौरान उसकी लेप्टान संख्या सुरक्षित रहे। इस प्रकार यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि ब्रह्मांड में लेप्टानों की कुल संख्या सर्वदा स्थिर रहती है।

$$\mu^- \rightarrow e^- + \bar{\nu}_e + \bar{\nu}_\mu \qquad (3)$$

लेप्टान संख्या +1 +1 +1 परिवर्तन = 0

और $n \rightarrow p + e^- + \nu_e \qquad (4)$

लेप्टान संख्या 0 0 +1 -1 परिवर्तन = 0

(n, p की लेप्टान संख्या 0 है क्योंकि वे लेप्टान नहीं है)

### (3) मेसान

मेसान कणिकाओं का चक्रण शून्य होता है, अतः उन्हें बोसान कणिकाओं में शामिल किया जाता है, यानी ये पौली के सिद्धांत के अनुरूप व्यवहार नहीं करती हैं। मेसान कणिकाएं किसी भी अवस्था में कितनी भी संख्या में उपस्थित रह सकती हैं, और ब्रह्मांड में इनकी संख्या अपरिवर्तनीय नहीं है। सामान्यतः मेसान कणिकाओं की तीन श्रेणियां होती हैं। पहली श्रेणी में अत्यधिक स्थाई प्रकृति की मेसान कणिकाएं शामिल हैं। इनकी अर्ध जीवन अवधि $10^{-24}$ सेकेंड से भी अधिक होती है। ये $\pi$ मेसान अथवा पिआन कणिकाओं के रूप में जानी जाती हैं। दूसरी श्रेणी में k मेसान कणिकाओं (कैआन) और तीसरी श्रेणी में $\eta$ मेसान कणिकाओं (एटा कणिकाएं) को शामिल किया गया है। पिआन कणिकाएं तीन तरह की होती हैं ($\pi^+$, $\kappa^0$, $\kappa^-$)। एटा कणिकाएं एक ही प्रकार की ($\eta^0$) होती हैं। $\pi^+$ पिआन और $k^+$ कैआन की प्रतिपिआन कणिकाएं क्रमशः $\pi^-$ और $k^-$ होती हैं। $\eta^0$ अपनी प्रतिकणिका स्वयं ही है। इन कणिकाओं के गुणधर्म तालिका एक में दिए गए हैं। पिआन कणिकाओं में अत्यंत तीव्रता से पारस्परिक क्रिया होती है। न्युक्लिआन कणिकाएं और पिआन कणिकाएं संयुक्त रूप से सशक्त बलों को उत्पन्न करती हैं। उन्हें नाभिक में प्रोटानों और न्युट्रानों को चिपकाए रहने वाले सरेस के सदृश्य माना जा सकता है।

मेसान कणिकाओं से संबंधित नाभिकीय अभिक्रियाओं का अध्ययन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि इन पर लेप्टान के संख्या–संरक्षण नियम जैसा कोई नियम लागू नहीं होता। अभिक्रिया इस प्रकार से होती है :

$$p + p \rightarrow p + p + \pi^0 \qquad (5)$$

$$p + n + \pi^+$$

और $p + n \rightarrow p + p + \pi^+$

अभिक्रिया शुरू होने की स्थिति में किसी मेसान कणिका का अस्तित्व नहीं था, जबकि उसकी समाप्ति पर एक मेसान कणिका ($\pi^{\pm/0}$) अस्तित्व में आ चुकी थी। इसी तरह समीकरण (6) में लेप्टान संख्या तो संरक्षित रहती है, पर एक मेसान कणिका लुप्त हो जाती है और उसके स्थान पर केवल लेप्टान कणिका प्रकट होती है। अभिक्रिया इस प्रकार है :

$$\pi^0 \rightarrow \gamma + \gamma$$

$$\pi^+ \rightarrow \mu^+ + \nu_\mu$$

$$\pi^- \rightarrow \mu^- + \bar{\nu}_\mu$$

यह सिद्धांत अन्य बोसान कणिकाओं पर भी लागू होता है। जब कोई परमाणु प्रकाश (बोसान) अवशोषित करता है तो फोटान लुप्त होते हैं और जब वह प्रकाश (बोसान) उत्सर्जित करता है तो फोटान सृजित होते हैं। समीकरण (6) में एक $\pi^0$ मेसान लुप्त होकर दो बोसान कणिकाओं (फोटानों) को सृजित करता है।

## (4) बेरियान

सभी बेरिआन कणिकाओं का चक्रण 1/2 होता है। ये फर्मिआन कणिकाओं की श्रेणी में आती हैं और पौली के सिद्धांत के अनुसार ही व्यवहार करती हैं। बेरिआन कणिकाओं में (क) न्युक्लिआन कणिकाएं $(n, \bar{n}, p, \bar{p})$ (ख) लंबडा कणिकाएं $(\Lambda^0\, \bar{\Lambda}^0)$, (ग) सिग्मा कणिकाएं $(\Sigma^+, \Sigma^0, \bar{\Sigma}, \bar{\Sigma}^+, \bar{\Sigma}^0, \bar{\Sigma}^-)$, (घ) $\chi$ कणिकाएं $(\Xi^0\, \Xi^-\, \bar{\Xi}^0\, \bar{\Xi}^+)$ और (च) ओमेगा कणिकाएं $(\Omega^-\bar{\Omega}^+)$ शामिल होती हैं। इन कणिकाओं का चक्रण 3/2 होता है। $\Lambda$, $\chi$ और $\Omega$ कणिकाओं को हाइपरान कणिकाएं कहते हैं। इसका कारण यह है कि इन कणिकाओं का स्थिर द्रव्यमान न्युक्लिआन कणिकाओं के द्रव्यमान से अधिक होता है। इन कणिकाओं के अन्य गुणधर्म तालिका (1) में दिए गए हैं।

दुर्बल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं में लेप्टान संख्या के संरक्षित रहने के नियम की तरह ही बेरियान कणिकाएं संरक्षण के एक अन्य नियम, यानी बेरियान संख्या के संरक्षण के नियम का भी पालन करती हैं। सभी बेरियान कणिकाओं को +1 बेरियान संख्या प्रदान की गई हैं, और प्रतिबेरियान कणिकाओं को -1 बेरियान संख्या दी गई है। गैरबेरियान गणिकाओं को 0 बेरियान संख्या दी गई है। उदाहरण के तौर पर मेसान कणिकाओं की बेरियान संख्या शून्य है। बेरियान संख्या वस्तुतः किसी भी परमाणविक न्युक्लिआन की द्रव्यमान संख्या 'A' के समतुल्य ही होती है। अतः जैसा कि समीकरण (7) में दर्शाया गया है :

$$n \rightarrow p + e^- + \bar{\nu}_e \qquad (7)$$

इस समीकरण में n और p को +1 बेरियान संख्या प्रदान की गई है, जबकि $e^-$ और $\bar{\nu}_e$ की बेरियान संख्या शून्य है। इस न्यूट्रान क्षरण प्रक्रिया में बेरियान संख्या, और लेप्टान संख्या, दोनों सुरक्षित रहती हैं।

एक रुचिकर तथ्य यह है कि $\Lambda^0$ और न्यूट्रान कणिकाएं अनेक मामलों में एक–दूसरे के समान होती हैं और किसी परमाणविक संरचना में $\Lambda^0$ कणिकाओं द्वारा न्यूट्रान कणिकाओं को विस्थापित किए जाने की संभावना........?

### संरक्षण संबंधी दो अन्य नियम

किसी भी नाभिकीय अभिक्रिया में लेप्टान संख्या और बेरियान संख्या के संरक्षण–संबंधी नियमों के अलावा दो और सरंक्षण–संबंधी नियमों का अनुपालन आवश्यक है। ये नियम हैं (अ) बाह्यता संख्या (स्ट्रैंजनेस नंबर) और (ब) समस्थानिक चक्रण।

तालिका 1

| नाम | कणिका | | | | | | | | प्रतिकणिका | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | संकेत आवेश | स्थिर द्रव्यमान (MeV) | चक्रण | लेप्टान संख्या | बेरियान संख्या | बाह्यता | माध्य जीवन अवधि (सेकेंड मे) | क्वार्क संरचना | संकेत आवेश | स्थिर द्रव्यमान (MeV) | चक्रण | लेप्टान संख्या | बेरियान संख्या | बाह्यता | क्षरण |
| फोटान | $\gamma$ | 0 | 1 | | | 0 | स्थिर | | y | 0 | 1 | | | | |
| ग्रेविटान | | 0 | 2 | | | 0 | स्थिर | | y | 0 | 2 | | | | |
| इलेक्ट्रान | $\beta^-, e^-$ | 0.511004 | 1/2 | 1 | 0 | 0 | स्थिर | | B+, e+ | 0.511004 | 1/2 | -1 | 0 | | |
| न्यूट्रीनो | $\nu_e$ | 0 | 1/2 | 1 | 0 | 0 | स्थिर | | ve | 0 | 1/2 | -1 | 0 | | |
| मेसान | $\mu^-$ | 105.66 | 1/2 | 1 | 0 | 0 | $2.198\times10^{-6}$ | | u+ | 105.66 | 1/2 | -1 | 0 | | |
| न्यूट्रीनो | $\nu_\mu^-$ | 0 | 1/2 | 1 | 0 | 0 | स्थिर | | $\bar{\nu}_\mu$ | 0 | 1/2 | -1 | 0 | | $e^-+\bar{\nu}_e+\bar{\nu}_\mu$ |
| टैआन | $\tau^-$ | 1.784 GeV | 1/2 | 1 | 0 | 0 | $3.0\times10^{-15}$ | | $\tau^+$ | 1.784 GeV | 1/2 | -1 | 0 | | |
| न्यूट्रीनो | $\nu_\tau$ | 0 | 1/2 | 1 | 0 | 0 | | | $\bar{\nu}_\tau$ | 0 | 1/2 | -1 | 0 | | |
| पिआन (उदासीन) | $\pi^0$ | 134.97 | 0 | | | 0 | $0.84\times10^{-16}$ | | $\pi^0$ | 134.97 | 0 | | 0 | | $2\gamma$ |
| (धनात्मक) | $\pi^+$ | 139.58 | 0 | | | 0 | $2.6\times18^{-8}$ | $p\,\bar{n}$ | $\pi^-$ | 139.58 | 0 | | 0 | | $\mu^++\bar{\nu}_\mu$ |
| (ऋणात्मक) | $\pi^-$ | 139.58 | 0 | | | 0 | $2.6\times18^{-8}$ | $n\,\bar{p}$ | $\pi^+$ | 139.58 | 0 | | 0 | | $\mu^-+\bar{\nu}_\mu$ |
| कैआन (उदासीन) | $K^0$<br>$K^0_S$<br>$K^0_L$ | 497.8 | 0 | | | <br>+1 | $0.84\times10^{-10}$<br>$5.17\times10^{-8}$ | $s\,\bar{p}$<br>$n\,\bar{s}$ | $\bar{K}^0$ | 497.8 | 0 | | -1 | -1 | $\pi^\pm+\pi^++\pi^-$ |
| (धनात्मक) | $K^+$ | 493.8 | 0 | | | +1+1 | $1.24\times10^{-8}$ | $p\,\bar{s}$ | $K^+$ | 493.8 | 0 | | -1 | +1 | $\pi^\pm+\pi^0$ |
| (ऋणात्मक) | $K^-$ | 493.8 | 0 | | | -1 | $1.24\times10^{-8}$ | $s\,\bar{p}$ | $K^-$ | 493.8 | 0 | | | -1 | $\mu^\pm+\nu_\mu^-$ |
| एटा (उदासीन) | $\eta^0$ | 548.8 | 0 | | | 0 | $2.5\times10^{-19}$ | | $\eta^0$ | 548.8 | 0 | | | 0 | $\pi^++\pi+\pi^0$ |
| Ex (उदासीन) | $X^0$ | 957.5 | 0 | | | | $71.6\times10^{-22}$ | | $X^0$ | 957.5 | 0 | | | 0 | $\pi^++\pi^-+\eta^0$<br>$\pi^++\pi^-+\gamma$ |
| पीएचओ<br>धनात्मक<br>ऋणात्मक<br>उदासीन | <br>$p^+$<br>$p^-$<br>$p^0$ | <br>765<br>765<br>767 | <br>1<br>1<br>1 | | | | | | <br>$p^-$<br>$p^+$<br>$p^0$ | <br>765<br>765<br>767 | <br>1<br>1<br>1 | | | | <br>$\pi^++\pi^0$<br>$\pi^-+\pi^0$<br>$\pi^++\pi^-, \pi^0+\pi^0$ |
| ओमेगा | $\omega^0$ | 783.9 | 1 | | | | | | $\omega^0$ | 783.9 | 1 | | | | $\pi^++\pi^-+\pi^0$ |
| कैस<br>धनात्मक<br>ऋणात्मक | <br>$K^{*+}$<br>$K^{*-}$ | <br>892<br>892 | <br>1<br>1 | | | | | | <br>$K^{*-}$<br>$K^{*+}$ | <br>892<br>892 | <br>1<br>1 | | | | <br>$K^++\pi^0$, $K^0+\pi^+$<br>$K^-+\pi^0$, $K^0+\pi^-$ |

*जारी..........*

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उदासीन | $K^{*0}$ | 899 | 1 | | | | | | $K^{*0}$ | 899 | 1 | | | | $K^0+\pi^0$, $K^++\pi^-$ |
| फाई | $\varphi^0$ | 1019.5 | 1 | | | | | | $\varphi^0$ | 1019.5 | 1 | | | | $\pi^++\pi^-+\pi^0$ |
| प्रोटान | p+ | 938.26 | 1/2 | 0 | 1 | 0 | स्थायी | ppn | $\bar{p}^-$ | 938.26 | 1/2 | 0 | -1 | 0 | |
| न्यूट्रान | $n^0$ | 939.55 | 1/2 | 0 | 1 | 0 | $0.39\times10^3$ | pnn | $n^0$ | 939.55 | 1/2 | 0 | -1 | 0 | $p+e^-+\bar{\nu}_e$ |
| लैंबडा | $\Lambda^0$ | 1115.6 | 1/2 | 0 | 1 | -1 | $2.52\times10^{-19}$ | pns | $\bar{\Lambda}^0$ | 1115.6 | 1/2 | 0 | -1 | +1 | $p+\pi^-$, $n+\pi^0$ |
| सिग्मा | | | | | | | | | | | | | | | |
| धनात्मक | $\Sigma^+$ | 1189.4 | 1/2 | 0 | 1 | -1 | $0.08\times10^{-10}$ | pps | $\bar{\Sigma}^-$ | 1189.4 | 1/2 | 0 | -1 | +1 | $p+\pi^-$, $n+\pi^+$ |
| उदासीन | $\Sigma^0$ | 1192.5 | 1/2 | 0 | 1 | -1 | $1.0\times10^{-14}$ | pns | $\bar{\Sigma}^0$ | 1192.5 | 1/2 | 0 | -1 | +1 | $\Lambda^0+\gamma$ |
| ऋणात्मक | $\Sigma^-$ | 1197.4 | 1/2 | 0 | 1 | -1 | $1.49\times10^{-10}$ | nns | $\bar{\Sigma}^+$ | 1197.4 | 1/2 | 0 | -1 | +1 | $n+\pi^-$ |
| X | | | | | | | | | | | | | | | |
| उदासीन | $\Xi^0$ | 1314.7 | 1/2 | 0 | 1 | -2 | $3.0\times10^{-10}$ | pss | $\bar{\Xi}^0$ | 1314.7 | 1/2 | 0 | -1 | +2 | $\Lambda^0+\pi^0$ |
| ऋणात्मक | $\Xi^-$ | 1321.3 | 1/2 | 0 | 1 | -2 | $1.66\times10^{-10}$ | nss | $\bar{\Xi}^+$ | 1321.3 | 1/2 | 0 | -1 | +2 | |
| डेल्टा | $\Delta^{++}$ | 1233 | 3/2 | 0 | | | | ppp | $\bar{\Delta}^{--}$ | 1233 | 3/2 | 0 | | | $p^++\pi^+$ |
| दोहरा | | | | | | | | | | | | | | | |
| धनात्मक | | | | | | | | | | | | | | | $p+\pi^0$ |
| एकल | $\Delta^+$ | 1233 | 3/2 | 0 | | | | ppn | $\bar{\Delta}^-$ | 1233 | 3/2 | 0 | | | $n^0+\pi^+$ |
| धनात्मक | | | | | | | | | | | | | | | |
| उदासीन | $\Delta^0$ | 1234 | 3/2 | 0 | | | | pnn | $\bar{\Delta}^0$ | 1234 | 3/2 | 0 | | | $n^0+\pi^-$ |
| ऋणात्मक | $\Delta^-$ | 1241 | 3/2 | 0 | | | | nnn | $\bar{\Delta}^+$ | 1241 | 3/2 | 0 | | | |
| सिग्मा स्टार | | | | | | | | | | | | | | | |
| धनात्मक | $\Sigma^{*+}$ | 1383 | 3/2 | 0 | | | -1 | pps | $\bar{\Sigma}^{*+}$ | 1383 | 3/2 | 0 | | +1 | $\Lambda^0+\pi^+$ |
| उदासीन | $\Sigma^{*0}$ | 1385 | 3/2 | 0 | | | -1 | pns | $\bar{\Sigma}^{*0}$ | 1385 | 3/2 | 0 | | +1 | $\Lambda^0+\pi^0$ |
| ऋणात्मक | $\Sigma^{*-}$ | 1386 | 3/2 | 0 | | | -1 | nns | $\bar{\Sigma}^{*-}$ | 1386 | 3/2 | 0 | | +1 | $\Lambda^0+\pi^-$ |
| X स्टार | | | | | | | | | | | | | | | |
| उदासीन | $\Xi^{*0}$ | 1529 | 3/2 | 0 | | | -2 | pss | $\bar{\Xi}^0$ | 1529 | 3/2 | 0 | | +2 | $\Xi^0+\pi^0$, $\Xi^-+\pi^+$ |
| ऋणात्मक | $\Xi^{*-}$ | 1534 | 3/2 | 0 | | | -2 | nss | $\bar{\Xi}^-$ | 1534 | 3/2 | 0 | | +2 | $\Xi^0+\pi^-$, $\Xi^-+\pi^0$ |
| ओमेगा | | | | | | | | | | | | | | | |
| ऋणात्मक | $\Omega^-$ | 1672 | 3/2 | 0 | | | -3 | sss | $\bar{\Omega}^+$ | 1672 | 3/2 | 0 | | +3 | $\Xi^0+\pi^-$, $\Xi^-+\pi^0$ |

## बाह्यता संख्या

लेप्टान कणिकाओं से संबद्ध दुर्बल पारस्परिक क्रियाएं दो प्रकार की होती हैः

(1) न्यूट्रीनो कणिकाओं से संबद्ध प्रक्रियाएं

$n \rightarrow\ p + e^- + \bar{\nu}_e$

$n^+ \rightarrow\ \mu^+ + \nu_\mu$

(2) बाहरी कणिकाओं, यानी जिन्हें हम कैआन, और हाइपरान कहते हैं ($\Lambda$, $\Sigma$, $\Xi$ और $\Omega$) से संबद्ध प्रक्रियाएं, उदाहरण के तौर पर –

$\Lambda^0 \rightarrow\ p + \pi^-$ (निर्बल प्रकृति की पारस्परिक क्रिया)

चूंकि इस प्रक्रिया में $\pi$ उत्सर्जित होती है, अतः इसे उन सशक्त प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं की श्रेणी में रखा जाना चाहिए, जिनकी अर्ध जीवन अवधि $10^{-23}$ सेकेंड होती है। लेकिन वास्तव में इस प्रक्रिया की अर्ध जीवन अवधि केवल $2.5\times10^{-10}$ सेकेंड होती है, अतः यह एक दुर्बल प्रकृति की प्रक्रिया है। इस तरह की अभिक्रियाओं की व्याख्या करने के लिए $\Lambda^0$ जैसी कणिकाओं (बेरियान और मेसान जैसी कणिकाएं, जिन्हें प्रबल प्रकृति की पारस्परिक क्रिया करनी चाहिए, पर वे ऐसा नहीं करतीं हैं) को 'बाह्यता संख्या' नाम की एक अन्य क्वांटम संख्या प्रदान की गई है। तालिका 1 में हाइपरान कणिकाओं की बाह्यता संख्या दी गई है। इनकी प्रति–कणिकाओं की बाह्यता संख्या हाइपरान कणिकाओं की बाह्यता संख्या के बराबर ही होती है, केवल उनके आवेश में अंतर होता है। उदाहरण के तौर पर $K^0$ की बाह्यता संख्या +1 होती है जबकि $\bar{K}^0$ की बाह्यता संख्या -1 होती है। $10^{-23}$ सेकेंड की जीवन अवधि वाली सभी प्रबल प्रकृति की प्रक्रियाओं में भी बाह्यता संख्या संरक्षित रहती है। जिन प्रक्रियाओं से बाहरी कणिकाएं संबद्ध नहीं होती हैं, (उदाहरण के तौर पर $n \rightarrow\ p + \pi^-$ ) उनके लिए बाह्यता संख्या महत्वहीन होती है क्योंकि ऐसी प्रक्रिया में शामिल सभी कणिकाओं को शून्य बाह्यता संख्या प्रदान की जाती है। लेकिन तनिक उन प्रक्रियाओं पर विचार किया जाए जिनमें बाहरी कणिकाएं शामिल होती हैं (उदाहरण के तौर पर $\pi^- +\ p \rightarrow k^0 +\ \Lambda^0$)। चूंकि प्रतिक्रियाशील पक्ष $\pi^-$ और p की बाह्यता संख्या शून्य है और RHS पर $K^0$ की बाह्यता संख्या +1 है एवं उस प्रक्रिया के दौरान अत्यंत प्रबल पारस्परिक क्रिया होती है, अतः बाह्यता संख्या को सुरक्षित रखने के लिए $\Lambda^0$ की बाह्यता संख्या -1 होनी चाहिए। दूसरी ओर $\Lambda^0 \rightarrow\ p + \pi^-$ अभिक्रिया में $\Lambda^0$, p और $\pi^-$ की बाह्यता संख्याएं क्रमशः +1, 0, 0 हैं, और चूंकि इस अभिक्रिया में ये संरक्षित नहीं रहती हैं, अतः इस प्रक्रिया के दौरान दुर्बल प्रकृति की पारस्परिक क्रिया (अर्ध जीवन अवधि = $10^{-10}$) होती हैं।

समस्त हेड्रान कणिकाओं के लिए उच्च आवेश Y के रूप में एक अन्य मानक भी निर्धारित किया गया है। Y को इस रूप में व्याख्यायित किया गया है, Y = B + S, यहां पर B बेरियान संख्या है। यदि अभिक्रिया के दौरान Y संरक्षित रहता है तो B और S भी संरक्षित रहते हैं।

## समस्थानिक चक्रण

प्रबल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं के दौरान आवेश संबंधित क्वांटम संख्या Q से एक अन्य क्वांटम संख्या का संरक्षण आवश्यक होता है। आवेश–क्वांटम संख्या Q का मान +1e आवेश वाली कणिकाओं के लिए +1, अनावेशित कणिकाओं के लिए शून्य तथा -e आवेश वाली कणिकाओं के लिए -1 होता है। ऐसी कणिकाएं भी होती हैं, जिन पर 2e अथवा -2e आवेश होता है। Q वस्तुतः किसी नाभिक की परमाणु संख्या के समतुल्य होती है। नाभिक की बेरियान संख्या A होती है।

समस्थानिक क्वांटम संख्या की आवश्यकता इसलिए होती है कि मूल कणिकाओं को छोटे–छोटे उपसमूहों में विभाजित कर दिया गया है (तालिका 1)। इन उप समूहों के सदस्यों का द्रव्यमान और चक्रण तो लगभग बराबर होता है, पर उनके विद्युत् आवेशों में अंतर होता है। मूलभूत कणिकाएं (n, p), ($\pi^0$, $\pi^+$, $\pi^-$), ($\Sigma^0$, $\Sigma^+$, $\Sigma^-$), ($\Xi^0$, $\Xi^-$), ($K^0$, $K^+$) आदि उपसमूहों में विभाजित हैं। किसी ऐसे छोटे उप समूह को आवेश उप समूह (आइसो मल्टिप्लेट्स) के रूप में जाना जाता है। समस्थानिक चक्रण संख्या I आवेश उप समूह के सभी सदस्यों के लिए एक समान होती है। (n, p) आवेश उपसमूह के सभी सदस्यों के लिए I का मान एक समान है। यही स्थिति ($\Sigma^+$, $\Sigma^0$, $\Sigma^-$) अन्य उप समूहों के सदस्यों पर भी लागू होती है। किसी भी आवेश उप समूह में सदस्यों की संख्या 2I+1 के बराबर होती है। इसे इस तरह भी लिखा जा सकता है $n = (2I+1)$। यहां n आवेश समूह के सदस्यों की संख्या है। (n, p) आवेश उप समूह के लिए यह संख्या 2 है। अतः $2 = 2I + 1$। इसलिए इस आवेश उपसमूह के लिए I का मान 1/2 होगा। इसी तरह हर आवेश उपसमूह के लिए I के मान की गणना की जा सकती है। ($\Sigma^+$, $\Sigma^0$, $\Sigma^-$), ($\pi^0$, $\pi^+$, $\pi^-$), ($\Xi^0$, $\Xi^-$) और ($K^0$, $K^+$) आवेश उपसमूहों के लिए I का मान क्रमशः +1, +1, 1/2,1/2 होगा। I को विशिष्ट ढंग से इसलिए परिभाषित किया गया है कि गणितीय दृष्टि से कोणीय संवेग से संबंधित चक्रण क्वांटम संख्या J तथा I के बीच गहरी अनुरूपता है। काणीय संवेग J और $J_3$ की ही तरह समस्थानिक चक्रण I और $I_3$ की भी गणना की जा सकती है। यदि I का मान 1/2 है तो $I_3$ का मान 1/2, -1/2 होना चाहिए। यदि I का मान 1 है तो $I_3$ का मान +1, -1, 0 यानी 2I+1 होना चाहिए।

2I+1 मानों को जिस प्रकार $I_3$ के लिए क्रमबद्ध किया गया है, उसी प्रकार इन मानों को Q (आवेश) के लिए भी क्रमबद्ध किया जा सकता है, पर $I_3$ और $Q_3$ एक ही चीज नहीं हैं। Q के मान को इस ढंग से परिभाषित किया जा सकता है

$$Q = I_3 + 1/2\,(B+S) = I_3 + Y/2$$

किसी भी आवेश उपसमूह के सदस्यों के लिए Y और S का मान एक समान होता है; पर उनके I के मानों में भिन्नता होती है। इस प्रकार समस्त अतिस्थिर हैड्रान कणिकाओं के लिए B, I, $I_3$, Q, Y और S क्वांटम संख्याएं निर्धारित की गई हैं। **तालिका 1** में ये मान दिए गए हैं।

## 4. ढांचा

अब हम संबद्ध कणिकाओं के किसी भी वर्ग को एक समूह मानकर ही विचार करेंगे। **चित्र 1** में एक $I_3Y$ समतल दर्शाया गया है। इसमें I भुज है और Y भुजकोटि है। इस समतल में एक इकाई विद्युत आवेश की वृद्धि होने के साथ बढ़ी प्रत्येक एकल कणिका को किसी उपसमूह में वर्गीकृत किया (उदाहरण के तौर पर $p^+$, $n^0$) गया है। मूल स्थान समतल के मध्य में निर्धारित किया गया है। स्मरण रहे कि अब तक प्रेक्षित प्रत्येक धनात्मक संख्या की एक ऋणात्मक संख्या भी अस्तित्वमान पाई गई है।

मान लिया जाए कि Y एक उच्च आवेश है और किसी निश्चित कणिका के लिए $I_3$ इसका समस्थानिक चक्रण घटक है। उस अवस्था में प्रत्येक कणिका को समतल में एक बिंदु के रूप में दर्शाया जा सकता है। इस पद्धति से समतल में किसी भी समूह की प्रत्येक कणिका को दर्शाया जा सकता है। **चित्र 2 और 3** में उन बेरियान कणिकाओं को आलेखित किया गया है, जिनका चक्रण 1/2 और 3/2 है। मेसान कणिकाओं के लिए भी ऐसे ही आलेख तैयार किए जा सकते हैं। इस Y $I_3$ समतल पर समस्त बेरियान और मेसान कणिकाओं का अष्ट–आयामी अथवा दस आयामी वर्गीकरण किया जा सकता है।

इन कणिकाओं को बाह्यता संख्या के रूप में एक चौथी क्वांटम संख्या भी प्रदान की गई है। यदि नाभिकीय अभिक्रियाओं के दौरान बाह्यता संख्या पूरी तरह सुरक्षित रहे तो S≠0 मान वाली कणिकाओं (उदाहरण के तौर पर ($\Sigma^-$, $\Sigma^0$, $\Sigma^+$,$K^0$, $K^+$ आदि) को प्रबल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं के दौरान कम ऊर्जा वाली हेड्रान कणिकाओं में रूपांतरित नहीं होना चाहिए, तथा उन्हें स्थाई कणिकाएं होना चाहिए। लेकिन वास्तविकता यह है कि ये सारी कणिकाएं अपघटित होती हैं। अपघटन की यह प्रक्रिया प्रबल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं के माध्यम से नहीं, बल्कि दुर्बल अथवा/और वैद्युत–चुंबकीय पारस्परिक क्रियाओं के माध्यम से संपन्न होती है। नीमैन और जेलमैन ने इन कणिकाओं पर सममिति सिद्धांत लागू करके $I_3Y$ समतल पर उनके पैटर्नों की व्याख्या की। उसने SU (3) समूह की परिकल्पना प्रस्तुत की। यह एक ऐसा समूह है जिसका एक जटिल समतल में एकात्मक–एकल मापांकीय (यूनिटरी यूनी माड्यूलर) ढंग से त्रिआयामी रूपांतरण होता है। इस लेख में उस समूह के बारे में विस्तृत चर्चा न करके केवल उस परिकल्पना के कुछ प्रासंगिक परिणामों का उल्लेख किया जाएगा। समूह के हर भाग के हर सदस्य को दो क्वांटम संख्याएं ($I_3$ और S) प्रदान की जा सकती है। इस समूह के अपरिवर्तनीय प्रतिरूपी आयाम 1, 3, 3*, 6, 6*, 8, 10, 10* आदि हो सकते हैं। इस प्रकार मेसान तथा बेरियान कणिकाओं के लिए आठ अथवा दस आयामी वर्तनीय अपरिवर्तनीय प्रतिरूप निर्धारित किए जा सकते हैं (तालिका 2)।

**तालिका 2**

| बेरियान कणिकाएं | मेसान कणिकाएं | क्वांटम संख्याएं I | Y = B + S |
|---|---|---|---|
| n, p | $K^0$ $K^+$ | 1/2 | 1 |
| $\Sigma^-$, $\Sigma^0$, $\Sigma^+$ | $\pi^-$, $\pi^0$, $\pi^+$ | 1 | 0 |
| $\Lambda$ | $n^0$ | 0 | 0 |
| $\Xi^-$, $\Xi^0$ | $K^-$ $K^0$ | 1/2 | -1 |

अगर SU (3) समूह की अभिक्रियाओं के दौरान हैमिल्टोनियम वास्तव में अपरिवर्तनीय रहते हैं तो किसी भी समूह की सभी सदस्य कणिकाओं की ऊर्जा (द्रव्यमान) एक समान होनी चाहिए, पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। एक ही समूह की कणिकाओं के भार में अंतर का कारण यह बताया जाता है कि मध्यम शक्ति की तथा वैद्युत–चुंबकीय प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं के कारण SU (3) की सममिति भंग हो जाती है, जिसके कारण भिन्न–भिन्न आवेशों तथा $I_3$ वाली कणिकाओं के बीच अंतर आ जाता है (चित्र 5)। SU (3) समूह की सममिति (यानी संतुलन) के भंग होने से ही एक ही समूह की विभिन्न कणिकाओं के द्रव्यमान में परिवर्तन आ जाता है।

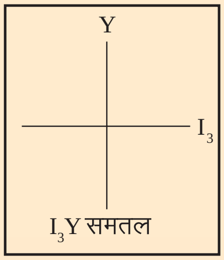

चित्र : 1

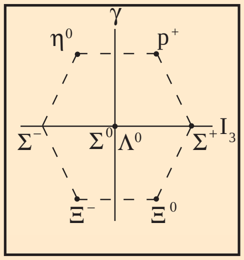

चित्र 2 : चक्रणशील बेरियान कणिकाएं

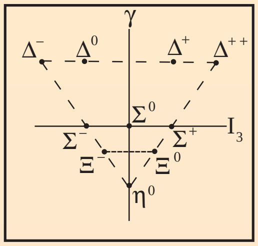

चित्र 3 : चक्रणशील बेरियान कणिकाएं

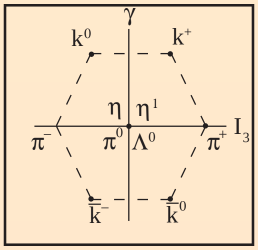

चित्र 4 : मेसान

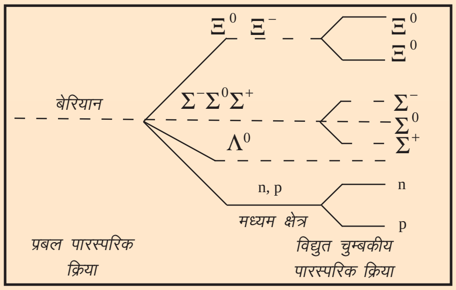

चित्र 5 : मेसान

इस सिद्धांत के आधार पर नई कणिकाओं के अस्तित्व की भविष्यवाणी की जाती है, तथा सभी ज्ञात कणिकाओं से संबंधित आंकड़ों को व्यवस्थित किया जाता है। दिन–ब–दिन त्वरित्रों की गुणवत्ता में सुधार लाया जा रहा है। अधिक शक्तिशाली त्वरित्रों की सहायता से टकराने वाली कणिकाओं की ऊर्जा में वृद्धि की जा रही है और अधिकाधिक अल्पजीवी कणिकाओं का सृजन किया जा रहा है तथा भविष्य में भी किया जाएगा। ऐसी कणिकाओं को अनुकंपन कहते हैं। SU(3) आयोजन में ऐसे अनुकंपनों के लिए भी स्थान है। $\Omega^-$ कणिका के बारे में पहले जानकारी नहीं थी, लेकिन SU(3) वर्गीकरण के माध्यम से इसके अस्तित्व की भविष्यवाणी संभव हो सकी। 1675 MeV द्रव्यमान वाली इस कणिका को बाद में ढूंढ़ निकाला गया और उसे SU(3) के दस सदस्यीय समूह में स्थान दिया गया। समूह के नौ अन्य सदस्य पहले से ही ज्ञात थे।

क्या ऊपर वर्णित किया गया सिद्धांत (उदाहरण के तौर पर अष्ट आयामी व्यवस्था) एक परिपूर्ण और गतिशील सिद्धांत है? यह सत्य है कि इसके माध्यम से $\Omega^-$ कणिका के अस्तित्व की भविष्यवाणी की गई, और दस आयामी व्यवस्था के अंतर्गत उसे बिल्कुल सटीक स्थिति मिल गई, इसके बावजूद इस सिद्धांत को परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के तौर पर यह सिद्धांत नए अधि–समूहों (सुपरमल्टिप्लेट्स) के अस्तित्व की भविष्यवाणी नहीं कर सकता। यद्यपि इस सिद्धांत ने हेड्रान कणिकाओं के द्रव्यमानों के बीच एक संबंध स्थापित किया, पर यह इस समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सका कि कणिकाएं द्रव्यमानयुक्त क्यों होती हैं? इस प्रकार यह सिद्धांत समस्याओं का संपूर्ण समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं है। इसके बावजूद इस सिद्धांत द्वारा व्याख्यायित ढांचे ने परमाणु संरचना को और गहराई से जानने का मार्ग प्रशस्त किया। एक तरह से यह सिद्धांत मेंडेलीव की आवर्त सारिणी जैसा है, जिसने इलेक्ट्रानों, प्रोटानों और न्यूट्रानों के माध्यम से परमाणु की संरचना को समझने में सहायता दी।

## क्वार्क्स

पिछले पैराग्राफ में जिस समस्या का उल्लेख किया गया है, उसका समाधान सन् 1962 में नीमैन ने प्रस्तुत किया। उन्होंने सन् 1962 में यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि SU (3) समूह के तीसरे आयान के अपरिवर्तनीय प्रतिरूपों से संबद्ध कणिकाओं का भी अस्तित्व होना चाहिए। इन कणिकाओं के लिए उन्होंने जिस क्वांटम संख्या की व्युत्पत्ति की, उसके मान I = 1/2, Y = 1/3 और I = 0, Y = -2/3 होने चाहिए। इन मानों का उपयोग करने पर इन कणिकाओं के लिए Q का मान (Q = 2/3, -1/3) और (Q = -1/3) होना चाहिए। आंशिक रूप से आवेशित इन कणिकाओं को नीमैन ने क्वार्क्स नाम दिया। नीमैन की परिकल्पना के अनुसार तीन तरह की क्वार्क कणिकाओं का अस्तित्व होना चाहिए। ऊपरी (अप–u), निचली (डाउन – d) और बाह्य (स्ट्रैंज – s) क्वार्क। बाह्य क्वार्क कणिका बाह्यता, यानी स्ट्रैंजनेस की वाहक होती है। प्रति–क्वार्क कणिकाओं की कल्पना $\bar{u}$, $\bar{d}$ और $\bar{s}$ क्वार्क के रूप में की गई। इन कणिकाओं की विशेषताएं तालिका 3 में दी हुई हैं। इन क्वार्क कणिकाओं की एक आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि इनका आवेश पूर्णांक में नहीं होता तथा इनकी बेरियान संख्या 1/3 होती है। प्रति क्वार्क कणिकाओं के आवेश, बेरियान संख्या और बाह्यता तथा सौम्यता, सौंदर्य और यथार्थता के चिन्ह क्वार्क कणिकाओं के चिन्हों से विपरीत होते हैं। इन क्वार्क और प्रतिक्वार्क कणिकाओं, दोनों की चक्रण संख्या 1/2 होती है। d औ u क्वार्क कणिकाओं के लिए समचक्रण (आइसोस्पिन) संख्या I 1/2 होती है जबकि S क्वार्क कणिकाओं के लिए यह शून्य होती है।

**तालिका 3 (क्वार्क्स)**

| **क्वार्क्स विशेषताएं** | **d** | **u** | **s** | **c** | **b** | **t** |
|---|---|---|---|---|---|---|
| आवेश | -1/3 | 2/3 | -1/3 | 2/3 | -1/3 | 2/3 |
| द्रव्यमान (MeV) | 4 | 7 | 150 | 1300 | 5500 | 17000 |
| चक्रण | 1/2 | 1/2 | 1/2 | 1/2 | 1/2 | 1/2 |
| बाह्यता | 0 | 0 | -1 | 0 | 0 | 0 |
| सौम्यता | 0 | 0 | 0 | 1 | 0 | 0 |
| सौन्दर्य | 0 | 0 | 0 | 0 | -1 | 0 |
| यथार्थता | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 1 |
| बेरियान संख्या | 1/3 | 1/3 | 1/3 | 1/3 | /13 | 1/3 |
| समचक्रण संख्या | 1/2 | 1/2 | 0 | | | |

इस मॉडल के अनुसार ये नियम लागू होते हैं

(1) सभी मेसान कणिकाएं एक क्वार्क और एक प्रतिक्वार्क के संयोजन से बनती हैं।
(2) सभी बेरियान कणिकाएं तीन क्वार्क कणिकाओं से बनी होती हैं।
(3) सभी प्रतिबेरियान कणिकाएं तीन प्रतिक्वार्क कणिकाओं से बनी होती हैं।
(4) लेप्टान कणिकाओं में क्वार्क संरचना उपस्थित नहीं होती।

समस्त मेसान और बेरियान कणिकाओं का क्वार्क विन्यास तालिका 1 में दिया गया है। तालिका 1 में दिए गए मानों से इस तथ्य को सत्यापित किया जा सकता है कि सभी कणिकाओं के विद्युत आवेश, उनकी बेरियान संख्या और बाह्यता संख्या का योग उनकी संरचना करने वाली क्वार्क कणिकाओं से संबद्ध मानों (क्वांटम संख्या) के कुल योग के बराबर होता है। उल्लेखनीय है कि क्वार्क मॉडल हेड्रान कणिकाओं पर लागू होता है जिनके बीच सशक्त बलों के मध्यम से अंतर्क्रिया होती है। यह मॉडल कणिकाओं के अन्य गुणों की भी व्याख्या करता है। जैसे –

(1) शून्य चक्रण वाली केवल नौ मेसान कणिकाएं होती हैं। इनका द्रव्यमान 1500 MeV से कम होता है। (आठ मेसान कणिकाएं + n')। नवीं मेसान कणिका इस तथ्य को सूचित करती है कि क्वार्क और एंटी क्वार्क युग्मों के केवल नौ भिन्न–भिन्न संयोजन ही संभव हैं। ये संयोजन इस प्रकार के हो सकते हैं – (u, $\bar{u}$), (d, $\bar{d}$), (s, $\bar{s}$), (u, $\bar{d}$), (u, $\bar{s}$), (d, $\bar{u}$), (s, $\bar{u}$), (d, $\bar{s}$) और (s, $\bar{d}$)। इन युग्मों (मेसान कणिकाओं) के आवेश Q और बाह्यता का विवरण तालिका 4 में दिया गया है। Q और S के इन मानों के अनुसार, इन नौ मेसान कणिकाओं से सात तरह की स्थितियां निर्मित हो सकती हैं। -1 बाह्यता वाली मेसान कणिका और +1 आवेश वाली मेसान कणिका के संयोग की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार +1 बाह्यता वाले मेसान और -1 आवेश वाले मेसान का संयोग संभव नहीं है।

**तालिका 4 (मेसान कणिकाएं)**

| Q→ S↓ | +1 | 0 | -1 |
|---|---|---|---|
| 1 | u $\bar{s}$ | u $\bar{d}$ | - |
| 0 | d $\bar{s}$ | u $\bar{u}$, d $\bar{d}$, s $\bar{s}$ | s $\bar{d}$ |
| -1 | - | d $\bar{u}$ | s $\bar{u}$ |

**तालिका 5 (बेरियान कणिकाएं)**

| Q→ S↓ | 0 | -1 | -2 | -3 |
|---|---|---|---|---|
| +2 | uuu | - | - | - |
| +1 | uud | uus | - | - |
| 0 | udd | uds | uss | - |
| -1 | ddd | dds | dss | sss |

ठीक इसी प्रकार S और Q के दस मानों से संबद्ध तीन क्वार्क कणिकाओं से भी केवल दस प्रकार के संयोग निर्मित हो सकते हैं (तालिका 5 देखें)। इस तथ्य को समझा जा सकता है कि -3 बाह्यता वाली बेरियान कणिकाएं 0 तथा 1 आवेश, -2 बाह्यता वाली बेरियान कणिकाएं +1 आवेश, अथवा -1 बाह्यता वाली बेरियान कणिकाएं +2 आवेश के साथ क्यों नहीं पाई जा सकतीं।

यह मॉडल मेसान कणिकाओं के चक्रण के पूर्णांकीय होने तथा बेरियान कणिकाओं के चक्रण के अपूर्णांकीय होने की भी व्याख्या करता है। मेसान कणिकाओं का चक्रण मान शून्य (↑↓) अथवा पूर्णांकीय (↑↑) हो सकता है। दूसरी ओर बेरियान कणिकाएं तीन क्वार्कों के संयोग से निर्मित होती हैं। अतः उनके चक्रण का योग 1/2 (↑↑↓) अथवा 3/2 (↑↑↑) होगा। परिणामतः बेरियान कणिकाओं के चक्रीय कोणिक संवेग का मान अपूर्णांकीय नहीं होता है। चूंकि क्वार्क कणिकाओं के कक्षीय कोणिय संवेग (L+S) का मान 0, 1, 2-- हो सकता है, .....अतः कुल कोणिक संवेग J (L+S) मेसान कणिकाओं के लिए पूर्णांकीय (L+0) और बेरियान कणिकाओं के लिए अर्ध पूर्णांकीय (L+1/2 अथवा 3/2) हो सकता है। इसी प्रकार मेसान कणिकाओं के लिए बेरियान संख्या शून्य और बेरियान कणिकाओं के लिए +1 होगी।

उल्लेखनीय है कि प्रोटानों और न्यूट्रानों में उपस्थित केवल दो क्वार्क u और d विश्व के समस्त पदार्थों की संरचना करने में सक्षम हैं। इसका कारण यह है कि हमारे पदार्थ केवल प्रोटानों, न्यूट्रानों और इलेक्ट्रानों से निर्मित हैं।

अब तक केवल तीन क्वार्क कणिकाओं u, d और s की व्याख्या की गई है, लेकिन तालिका में दी गई क्वार्क कणिकाओं की संख्या 6 है। इसका कारण यह है कि अन्य तीन क्वार्क कणिकाओं की खोज निर्बल अंतर्क्रियाओं का अध्ययन करने के दौरान बाद में हुई है। इन पारस्परिक क्रियाओं में भाग लेने वाली हेड्रान कणिकाओं के कुल विद्युत आवेश में तो परिवर्तन नहीं होता पर उनकी बाह्यता संख्या में परिवर्तन होता है। इसी प्रकार निर्बल और वैद्युत–चुंबकीय पारस्परिक क्रियाओं के एकीकृत क्षेत्र सिद्धांत (UFT) ने क्वार्क कणिकाओं और लेप्टान कणिकाओं के बीच एक अतिरिक्त सममिति का संकेत दिया। इस अतिरिक्त सममिति में एक अतिरिक्त क्वांटम संख्या भी समाविष्ट हैं। इससे बाह्यता संख्या की वाहक क्वार्क S जैसी ही एक अन्य क्वार्क C यानी चार्म (सौम्यता) की उपस्थिति का बोध हुआ। चार्म की क्वांटम संख्या +1 है। किसी भी अन्य क्वार्क की क्वांटम संख्या +1 नहीं है। इसे फ्लेवर (विशिष्टता) कहते हैं। विशिष्टता (यानी आवेश) प्रबल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं और वैद्युत–चुंबकीय पारस्परिक क्रियाओं के दौरान तो संरक्षित रहती है, पर निर्बल प्रकृति की पारस्परिक क्रियाओं के दौरान संरक्षित नहीं रहती। इसका विद्युत आवेश +2/3, बेरियान संख्या 1/3 और सौम्यता +1 होती है, जबकि प्रतिसौम्यता क्वार्क का विद्युत आवेश -2/3, बेरियान संख्या 1/2 और सौम्यता -1 होती है।

उच्च क्वार्कों के माध्यम से और अधिक भारी कणिकाओं की खोज को भी व्याख्यायित करना संभव है। u, d, s और c क्वार्कों ने अन्य क्वार्कों की खोज का मार्ग प्रशस्त कर दिया। बाद में एक ऐसी क्वार्क को खोजा गया जो c क्वार्क से भी भारी थी। उसका नाम ब्यूटी (सौन्दर्य) क्वार्क रखा गया जिसकी विशिष्टता (फ्लैवर) 1 थी। इसकी सहायता से एक अन्य भारी मेसान कणिका के अस्तित्व की व्याख्या की जा सकी। इस मेसान की संरचना को $(b\,\bar{b})$ के माध्यम से दर्शाया जाता है। इसके गुण का विवरण तालिका 4 में दिया गया है। चूंकि अन्य सभी क्वार्क कणिकाएं किसी एक ही पीढ़ी से संबद्ध हैं (उदाहरण के तौर पर (u d) का संबंध पहली पीढ़ी से और (s c) का संबंध दूसरी पीढ़ी से है, अतः तीसरी पीढ़ी में ब्यूटी क्लार्क बिना किसी जोड़ीदार के अकेली ही रह गई। इससे अनुमान लागया गया कि नई ढंग की विशिष्टता वाली किसी छठीं क्वार्क का भी अस्तित्व होना चाहिए। सन् 1985 में इस छठीं क्वार्क को खोज लिया गया और इसका नाम ट्रुथ (t), यानी सत्य रखा गया। इसकी खोज एक ऐसी मेसान कणिका की खोज के माध्यम से संभव हुई जिसमें ट्रुथ क्वार्क उपस्थित था। इसके गुणों का ब्योरा तालिका 4 में दिया गया है। आज तक पदार्थ की संरचना की व्याख्या इन छह क्वार्कों की सहायता से ही की जाती है। संभव है कि भविष्य में इन तीन पीढ़ियों के क्वार्कों के अलावा और भी क्वार्क ढूंढ़ लिए जाएं लेकिन इसके लिए और अधिक ऊर्जायुक्त कणिका पुंजों की आवश्यकता होगी, जिनका सृजन इन दिनों उपयोग में लाए जा रहे त्वरित्रों से अधिक विशाल त्वरित्रों के माध्यम से ही किया जा सकता है।

मौजूदा स्थिति यह है कि अब तक ढूंढ़ी जा चुकी छह ग्लुआन कणिकाओं को तीन पीढ़ियों (u d), (s c), (b t) के समूहों में बांटा गया है और इन्हीं के माध्यम से पदार्थ की संरचना की व्याख्या की जाती है। समस्त नई हेड्रान कणिकाएं इस मान्यता के दायरे में उपयुक्त ढंग से व्यवस्थित हो जाती हैं कि एक बेरियान कणिका तीन क्वार्कों से निर्मित होती है तथा क्वार्क और प्रतिक्वार्क के एक युग्म से मेसान की संरचना होती है। कुछ बेरियान और मेसान कणिकाओं के गुण–धर्म तालिका 6 में दिए गए हैं।

**तालिका 6 – क्वार्क विन्यास**

| मेसान | बेरियान | परमाणु |
|---|---|---|
| $\pi^+$ ···· $u\,\bar{d}$ | p = uud | He = $u_6 d_6 e_2$ |
| $\pi^-$ ···· $\bar{u}\,d$ | n = udd | c = $u_{18} d_{18} e_6$ |
| $\pi^0$ ···· $u\,\bar{u} + d\,\bar{d}$ | $\Lambda$ = uds | |
| $K^+$ ···· $u\,\bar{s}$ | $\Lambda^{++}$ = uuu | |
| $\varphi$ ···· $s\,\bar{s}$ | $\Omega$ = sss | |
| J/$\varphi$ ···· $c\,\bar{c}$ | | |
| Y ···· $b\,\bar{b}$ | | |

## ग्लूआंस

एक रोचक तथ्य यह है कि अब तक ऐसी किसी कणिका को पृथक नहीं किया जा सका है जिसकी संरचना दो क्वार्कों अथवा दो क्वार्कों एवं एक प्रति क्वार्क से हुई हो। इसके बजाय ये क्वार्क एक क्वार्क तथा एक प्रति क्वार्क का युग्म बनाते हैं अथवा तीन क्वार्क परस्पर संयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त इस संबंध में भी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है कि मेसान और बेरियान कणिकाओं को कौन सी शक्ति बांधे रहती है।

प्रायोगिक स्तर पर यह पाया गया कि हेड्रान कणिकाओं में क्वार्क इस ढंग से व्यवहार करते हैं मानो वे मुक्त ढंग से विचरण कर रहे हों और उनके बीच के बंध–नाभिक में पायी जाने वाली ग्लूआन कणिकाओं के बीच के बंधों से कमजोर होते हैं। इस तथ्य के बावजूद कि बेरियान और मेसान में उपस्थित क्वार्कों के बीच के बंध दुर्बल हैं, किसी स्वतंत्र क्वार्क को अब तक पृथक नहीं किया जा सका है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संभवतः क्वार्क जब एक–दूसरे के निकट होते हैं तो उनके बीच के बंध दुर्बल होते हैं, परंतु वे जैसे–जैसे एक–दूसरे से दूर होते जाते हैं, वे बंध प्रबल होते जाते हैं (क्वार्कों का परिसीमन)। यह भी पाया गया कि उनके बीच की पारस्परिक क्रिया प्रबल प्रकृति की होती है।

क्वार्क फर्मी कणिकाएं हैं उनका चक्रण 1/2 होता है। ऐसी स्थिति में यह कैसे माना जा सकता है कि तीन क्वार्कों का समूह उदाहरण के तौर पर $\Omega$ (sss), $\Lambda^{++}$ (uuu) अथवा $\Lambda^-$ (ddd) जिसका कुल चक्रण 3/2 है तथा कक्षीय कोणिक संवेग (L = 0) है, पौली के सिद्धांत का अनुपालन करेगा। वैज्ञानिकों ने इस समस्या का जो सबसे स्वीकार्य समाधान प्रस्तुत किया, वह यह था कि क्वार्क निस्संदेह पौली के सिद्धांत का अनुपालन करते हैं, लेकिन उनकी एक और क्वांटम संख्या होती है, जिसे रंग (कलर) कहते हैं। क्वार्क समूह की तीनों कणिकाओं के लिए इस क्वांटम संख्या का मान अलग–अलग हो सकता है, [उदाहरणार्थ लाल (रेड –R), पीला (येलो –Y), और नीला (ब्ल्यू – B)]। नमूने के तौर पर s, s, s क्वार्क समूह की तीनों कणिकाओं के लिए अन्य सभी क्वांटम संख्याएं (बाह्यता आवेश, चक्रण आदि) निस्संदेह एक समान होती हैं पर उनके लिए यह नई क्वांटम संख्या (रंग) भिन्न–भिन्न यानी R, Y और B होती है। इस प्रकार $\Omega^-$ में उपस्थित तीनों क्वार्कों में एक लाल s, दूसरा पीला s और तीसरा नीला s है। अतः तीनों क्वार्क एक ही अवस्था में नहीं हैं और पौली के सिद्धांत का अनुपालन करते हैं। $\Omega^-$ में तीनों क्वार्कों का संयोग इसे रंगहीन अथवा श्वेत बना देता है। प्रतिक्वार्क प्रणाली में भी यही स्थिति होती है। तीनों विभिन्न रंगों के संयोग (जैसा कि $\Omega$ में होता है) के कारण क्वार्क समूह रंगहीन अथवा श्वेत हो जाता है। अतः हेड्रान और मेसान के संदर्भ में क्वार्कों पर एक महत्वपूर्ण सिद्धांत लागू होता है कि वे सभी रंगहीन होते हैं (क्वार्क और एंटी क्वार्क का संयोग भी उन्हें रंगहीन बनता है)।

क्वार्कों में बलों की उत्पत्ति रंगों से होती है। इस प्रकार वे विद्युत् आवेशों की भांति व्यवहार करते हैं। इस रंग बल सिद्धांत (क्रोमोडायनैमिक फोर्स – रंगीय गतिज बल) में एक नए प्रकार के पदार्थ (ग्लूआंस) के अस्तित्व का संकेत भी निहित है। विद्युत बलों के अनुरूप ही समान प्रकार के रंगीय आवेश एक–दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं जबकि विपरीत प्रकार के रंगीय आवेश एक–दूसरे को आकर्षित करते हैं। मेसान में विपरीत रंग–आवेशों की उपस्थिति के कारण ऐसा ही होता है। क्वार्क और प्रति क्वार्क में इन विपरीत आवेशों के अतिरिक्त लाल–पीला अथवा लाल–नीला जैसे असमान रंग–आवेश भी होते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार रंगीय बलों के वाहकों के प्रभाव में आठ वैद्युत–उदासीन कणिकाएं होती हैं, जिनका द्रव्यमान शून्य और चक्रण 1 होता है (फोटान के सदृश्य)। इन कणिकाओं को ग्लूआन कहा जाता है। फोटान के विपरीत ग्लूआन रंगयुक्त होते हैं (फोटान रंगहीन और विद्युत आवेश रहित होते हैं)। वस्तुतः मेसानों की ही तरह ग्लूआन भी किसी रंग और उसके विपरीत रंग की उपस्थिति के कारण द्विरंगी होते हैं। रंगयुक्त होने के कारण ये ग्लूआन एक–दूसरे पर रंग–गतिज बल आरोपित करते हैं जो क्वार्कों को परस्पर बांधे रखने वाली लड़ी का काम करता है। इसके रंग गतिज बल के कारण क्वार्कों की दूरी बढ़ने पर उन्हें बांधे रखने वाले बल में भी बढ़ोत्तरी हो जाती है। इस प्रकार जब कोई ग्लूआन अवशोषित और उत्सर्जित होता है तो क्वार्क का रंग भी परिवर्तित हो जाता है। यह रंग–परिवर्तन इस तथ्य पर निर्भर होता है कि उत्सर्जित अथवा अवशोषित होने वाला ग्लूआन किस रंग का वाहक है। उदाहरण के तौर पर जब कोई नीला $\mu$ क्वार्क नीले और प्रति–लाल

रंग ($Gb\bar{r}$) के वाहक ग्लूआन को अवशोषित अथवा उत्सर्जित करता है तो क्वार्क लाल μ क्वार्क में परिवर्तित हो जाता है ($U_b \rightarrow U_r + Gb\bar{r}$ और $dr + Gb\bar{r} \rightarrow d_b$)। छह ग्लूआन रंग परिवर्तक होते हैं ($Gr\bar{b}$, $Gr\bar{y}$, $Gb\bar{r}$, $Gy\bar{r}$, $Gy\bar{b}$) और दो ग्लूआन रंग–संरक्षक होते हैं। ये रंग संरक्षक ग्लूआन $G_0$, $G_0'$ रंग संयोजन के वाहक होते हैं। इस प्रकार ग्लूआनों की संख्या आठ होती है।

आवेश कणिकाओं की ही तरह एक त्वरित क्वार्क भी ग्लूआन उत्सर्जित करता है लेकिन ये उत्सर्जित ग्लूआन हेड्रान कणिकाओं के अंदर ही आबद्ध रहते हैं (अब तक किसी स्वतंत्र ग्लूआन को पृथक नहीं किया जा सका है)। यदि वह स्वतंत्र भी हो जाता है तो हेड्रान के अंदर ही स्वतंत्र अवस्था प्राप्त होने से पूर्व की एक ज्ञात हेड्रान कणिका में रूपांतरित हो जाता है। क्वार्कों के बीच ग्लूआनों का आदान–प्रदान निरंतर होता रहता है। इन क्वार्कों द्वारा सृजित संवेग के एक भाग का उपयोग करके ग्लूआन इसके अंदर इधर–उधर विचरण करते रहते हैं। इस प्रकार वे क्वार्क के अंदर अत्यंत सशक्त बलों का सृजन करते हैं। जिस प्रकार विद्युत बल की व्याख्या करने वाले सिद्धांत को क्वांटम वैद्युत गतिज सिद्धांत क्वांटम (इलेक्ट्रो डायनैमिक्स – Q E D ) कहते हैं, उसी प्रकार क्वार्कों के अंदर रंगीय बल की व्याख्या करने वाले सिद्धांत को क्वांटम रंगीय–गतिज सिद्धांत (क्वांटम क्रोमोडायनैमिक्स – Q C D) कहते हैं। हालांकि Q C D सिद्धांत अत्यंत गणितीय प्रकृति का है, पर यह क्वार्कों के बीच होने वाली प्रबल प्रकृति की वास्तविक पारस्परिक क्रियाओं का उपयुक्त विवरण प्रस्तुत करता है। इससे इस तथ्य की भी व्याख्या होती है कि क्वार्क के अंदर के बल हेड्रान के अंदर कार्यरत बलों (जैसे न्यूट्रानों और प्रोटानों के बीच कार्य करने वाला नाभिकीय बल) से किस प्रकार भिन्न है। प्रबल प्रकृति के वास्तविक बल केवल रंगयुक्त कणिकाओं के बीच कार्य करते हैं, जबकि हेड्रान रंगहीन होते हैं और उनके बीच कार्यरत बल अवशिष्ट बल (रेजिड् यूल फोर्स) अथवा परमाणुओं के बीच कार्यरत सह संयोजक बल होते हैं। वैसे ये अवशिष्ट बल भी सशक्त होते हैं, लेकिन ये मेसान कणिकाओं के बीच केवल थोड़ी दूरी तक ही प्रभावी रहते हैं। प्रबल प्रकृति के वास्तविक बलों के कारण बेरियान कणिकाओं में चुंबकीय संवेग जैसे गुण उत्पन्न होते हैं। ये हेड्रान कणिकाओं के द्रव्यमान को सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा कणिकाओं के द्रव्यमान के वर्णक्रम में अतिसूक्ष्म एवं बारीक संरचनागत प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

परमाणु प्रणाली में उद्दीपन ऊर्जा कुछ इलेक्ट्रान वोल्ट ही होती है। कोई भी उद्दीप्त परमाणु अतिरिक्त ऊर्जा को फोटान के रूप में विकिरित करके अपनी मूल अवस्था में लौट सकता है। यदि फोटान ऊर्जा में इलेक्ट्रान की स्थिर द्रव्यमान ऊर्जा से दूनी ऊर्जा होती है तो यह इलेक्ट्रान–पाजिट्रान युग्म में रूपांतरित हो जाता है। लेकिन इसके लिए MeV पैमाने की ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो परमाणु प्रणाली में निहित ऊर्जा से काफी अधिक होती है। क्वार्क प्रणाली में 100 MeV उद्दीपन ऊर्जा होती है। इस अतिरिक्त ऊर्जा से फोटान उत्सर्जित हो सकते हैं, अथवा क्वार्क और प्रति क्वार्क के युग्म का सृजन हो सकता है। इस प्रकार उद्दीपन स्तर घट जाता है तथा प्रोटान की मूल अवस्था जैसी अवस्था आ जाती है।

मेसान और बेरियान कणिकाओं की संरचना पद्धति के माध्यम से इस तथ्य को अत्यंत उपयुक्त ढंग से दर्शाया गया है कि क्वार्कों ओर ग्लूआनों को पृथक नहीं किया जा सकता क्योंकि केवल रंगहीन कणिकाएं ही पृथक की जा सकती हैं। चूंकि प्रत्येक क्वार्क रंगयुक्त होता है, अतः पृथक किया गया क्वार्क भी रंगीन होगा। ग्लूआन पर भी यही नियम लागू होगा। क्वार्क के रंगहीन संयोजन में क्वार्क और प्रतिक्वार्क का युग्म अथवा क्वार्क या प्रति क्वार्क की ऐसी त्रयी होनी चाहिए जिनके प्रत्येक क्वार्क में तीनों रंगों में से एक–एक रंग मौजूद हों।

पदार्थ की संरचना को समझने के लिए की गई अपनी इस यात्रा के दौरान हमने विभिन्न संरचनागत ढांचों का अवलोकन किया, लेकिन हमारा मानना है कि प्रकृति को सरल होना चाहिए और उसने पदार्थ की संरचना के लिए निर्माण के कुछ गिने–चुने ढांचों का ही प्रयोग किया होगा। मितव्ययिता का यह सिद्धांत सौ तत्वों के वैविध्य की व्याख्या प्रोटान, न्यूट्रान और इलेक्ट्रान को उनके संरचनागत ढांचों के रूप में प्रस्तुत करके करता है। उसके बाद वह ग्लूआनों से बंधे क्वार्कों और प्रतिक्वार्कों तथा छह लेप्टानों को समस्त पदार्थों के संरचनागत ढांचे के रूप में प्रस्तुत करता है। संभव है कि और कणिकाओं का सृजन होने पर हमारे सामने कोई ऐसा सिद्धांत प्रस्तुत हो जो हमारे इर्द–गिर्द उपस्थित पदार्थों की संरचना की व्याख्या ओर कम संरचनागत ढांचों के आधार पर कर सके।

प्रतीक्षा करें और भावी गतिविधियों पर दृष्टि रखें।

### अधिक अध्ययन के लिए संदर्भ :


1. जे. ब्रेहम एवं विलियम जे. मुलेन, *इन्ट्रोडक्शन टु दि स्ट्रक्चर ऑफ मैटर;* जान वायली एण्ड संस, न्यूयार्क (1989)।
2. डगलस सी. क्रिएनकोले, *फिजिक्स फॉर साइन्टिस्ट्स एण्ड इंजीनियर्स; पेंटिस हाल, अपर सैडिल रिवर, न्यूजर्सी,* तीसरा संस्करण, (2000)
3. डब्ल्यू.एस.सी. विलियम्स, *एन इन्ट्रोडक्शन टु एलिमेन्टरी पार्लिसेलर;* दूसरा संस्करण, एकेडेमिक प्रेस, न्यूयार्क (1071)।
4. यू नोवोज़िलोव (जोनाथन रोज़नर एल–एच द्वारा अनूदित), *एन इन्ट्रोडक्शन टु एलिमेन्टरी पार्टिकिल थ्योरी;* पेरगामोन प्रेस, न्यूयार्क (1975)।
5. जेम्स ट्रेफेल, *एन्सेजेक्लोपेडिया ऑफ साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी,* राउटलेज, न्यूयार्क (2001)।
6. डेविड ग्रिफिथ्स, *इन्ट्रोडक्शन टु एलीमेन्टरी पार्टिकिल्स,* हारपर एण्ड रो., न्यूयार्क (1987)।
7. हेलज़ेन, फ्रांसिस एण्ड एलेन डी. मार्लिन, *क्वार्ल्स एण्ड लेप्टॉन्स;* जॉन वायली, न्यूयार्क (1984)।
8. राइडर लेविस, *एलीमेन्टरी पार्टिकिल्स एण्ड सिमलेरीज़,* गार्डोन एण्ड ब्रीच, न्यूयार्क (1975)।



**उमेश चन्द्र अग्रवाल, पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रसायनशास्त्र विभाग, इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, कानपुर, 295ए, ब्लॉक सी–1, इन्दिरा नगर, कानपुर 208026**

**हीरालाल निगम, पूर्व उपकुलपति – ए पी एस यूनिवर्सिटी, रीवा और प्रोफेसर, रसायनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, बी–323बी, सेक्टर–ए, सीतापुर रोड़ स्कीम, लखनऊ 226024**
**ई–मेल : Dr_nigam@rediffmail.com**

अनुवादक : प्रमोद झा


◆◆◆

## संपादक के नाम पत्र

विज्ञान के क्षेत्र में नयी–नयी खोज तथा अभिनव कल्पना की जानकारी इस पत्रिका के जरिए आप हम तक पहुंचाते हैं। कुंडली के पचास वर्ष – विमान बसु द्वारा लिखा हुआ लेख काफी महत्त्वपूर्ण तथा अभ्यासपूर्ण है। सुबोध महंती द्वारा लिखा लेख ''जीवन के रहस्य को सुलझाने वाले'' काफी रोचक तथा अभ्यासपूर्वक हैं। आपके हर अंक से हमें काफी जानकारी मिलती है। यह जानकारी हम राष्ट्रीय बालविज्ञान के सभी छात्रों तक हम पहुंचाते हैं।

**प्रो. आर.सी. मुकवाने**
वसीम जिला कोर्डिनेटर

ड्रीम 2047 मासिक पत्रिका में फरवरी 2000 में प्राचीन भारत में कांच निर्माण के विषय में पढ़कर बेहद रुचिकर जानकारी प्राप्त हुई। केन्द्रीय काच व सिरेमिक अनुसंधान संस्थान के विषय में पढ़कर अति महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। चूंकि हमारा जिला (फिरोजाबाद) कांच उत्पादन में भारत में नहीं बल्कि विश्व में एक विशेष स्थान रखता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप कांच के विषय में समय–समय पर जानकारी उपलब्ध कराते रहें। मैंने यह पत्रिका कांच उत्पादक मित्रों को भी दिखायी है, उन्होंने आपको धन्यवाद प्रेषित किया है।

**शिवकांत शर्मा**
पोस्ट, ग्राम–बिल्टीगढ़, जिला फीरोजाबाद, पिन – 205 145

# बीरबल साहनी

## भारत में पुरा–वनस्पतिक अनुसंधान के संस्थापक

❑ सुबोध महंती

हर शताब्दी में समय–समय पर ऐसे व्यक्तियों का उदभव हुआ है जिन्होंने विज्ञान के सत्यों को अव्यवस्थित प्रमाणों के बीच से बाहर निकाला है। इस तरह उन्होंने समय की रेत पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। ऐसे व्यक्तियों ने न केवल वैज्ञानिक सत्यों की खोज की है, न केवल वैज्ञानिक ज्ञान में अपना योगदान दिया, बल्कि विज्ञान को उसकी गरिमा और दीप्ति प्रदान की है। बीरबल साहनी एक ऐसे ही व्यक्ति थे।

**''प्रोफेसर बीरबल साहनी'' (एक पुस्तिका) से उद्धृत, बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पैलियोबॉटनी, लखनऊ, 2002**

पैलियोबॉटनी में मेरी अपनी रुचि से इस बात की उम्मीद बढ़ी है कि मैं इस रोचक विषय को और प्रमुखता से अपने देशवासियों के समक्ष लाने में सहयोग कर सकूंगा; और शायद उनमें से एक बड़ी संख्या का ध्यान मूल अनुसंधान के लिए प्रस्तुत इस समृद्ध क्षेत्र की तरफ मोड़ने में सफल हो सकूंगा।

**1920 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वनस्पति अनुभाव के अध्यक्ष के रूप में बोलते हुए बीरबल साहनी।**

देश की बहुत सी समस्याएं आसानी से हल की जा सकती हैं, यदि लोग डॉ. साहनी की तरह अपने कर्त्तव्य के प्रति एकाग्र समर्पण रखें.......। आज बदलते समय और वैज्ञानिक तरीके से सोचते हुए समन्वय और संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है। विज्ञान अकेले ही हमारी समस्याओं को समझने में हमारी सहायता कर सकता है। विज्ञान का अभिप्राय सत्य की तलाश है। मैं इस इंस्टीट्यूट की बुनियाद रखते हुए खुश हूं जो लोगों को विज्ञान में रुचि लेने और उन्हें विज्ञान के बारे में जागरूक बनाने में मदद करेगा।

**3 अप्रैल, 1949 को 'बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पैलियोबॉटनी' की बुनियाद रखने के दौरान दिया गया पं. जवाहरलाल नेहरू का भाषण।**

भारत में पुरा वनस्पतिक अनुसंधान के संस्थापक बीरबल साहनी एक स्वप्नदृष्टा और कल्पनाशील व्यक्ति थे। उन्होंने लखनऊ में पुरा–वनस्पति विज्ञान संस्थान की स्थापना की, जिसका नाम उनकी मृत्यु के बाद 'बीरबल साहनी पुरा–वनस्पति विज्ञान संस्थान' कर दिया गया। साहनी एक महान प्राध्यापक थे। वह इस बात में विश्वास करते थे कि एक अच्छा प्राध्यापक बनने के लिए एक अच्छा शोध होना आवश्यक है। वह सभी स्तरों पर विज्ञान के एक उत्कृष्ट संचारक थे। वह एक महान देशभक्त थे। उनके एक छात्र टी. एस. सदाशिवन के अनुसार : ''अपने विद्यार्थियों के लिए वह अनुकरणीय आदर्श थे, वो उनसे प्यार और उनका सम्मान करते थे। मूलतः एक राष्ट्रवादी के रूप में उनका व्यक्तित्व ऐसा था, जो सम्पूर्ण वैज्ञानिक समुदाय का ध्यान आकृष्ट करता था। उन्होंने कभी किसी से कुछ नहीं चाहा। वस्तुतः वह अपनी प्रशासनिक व शैक्षणिक प्रतिभा के लिए ही चाहे जाते थे। वह एक सुरुचिपूर्ण व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व एकदम साफ सुथरा था। उनकी पोशाक सादी ओर सुरुचिपूर्ण थी, लहराती हुई अचकन, चूड़ीदार पजामा और गांधी टोपी, सभी हाथ से काती–बुनी खादी का होता था। ये सभी उनके आकर्षण को बढ़ा देते थे। यहां तक कि उनके निधन के चालीस साल गुजर जाने के बाद भी हमारे पास ऐसे मोहक गुरु जैसा कोई नहीं है, पर उनके साथ बितायी कई वर्षों की स्नेहिल स्मृतियों को किसी के साथ बांटना हम अपना विशेषाधिकार समझते हैं। उनका जीवन दर्शन एक सच्चे वेदांती की तरह था, किसी अनासक्ति में आसक्ति की तरह। कर्त्तव्य परायणता मुख्यतः उनकी विशेषता थी।

*बीरबल साहनी*

बीरबल साहनी का जन्म 14 नवम्बर, 1891 को शाहपुर जिले के एक छोटे से व्यापारिक कस्बे भेरा में हुआ था, जो अब पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब का हिस्सा है। साहनी के पूर्वज उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रांत या 1947 के पहले के पंजाब राज्य के डेरा इस्माइल खान से भेरा आकर बस गए थे। अंत में उनका परिवार लाहौर विस्थापित कर दिया गया। वह अपने माता–पिता श्री रुचिराम साहनी व श्रीमती ईश्वरी देवी आनन्द की तीसरी संतान थे। रुचिराम साहनी, जिन्होंने पंजाब में विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में अग्रणी भूमिका निभाई, एक स्वतः निर्मित व्यक्ति थे। वह एक वैज्ञानिक, एक नव–प्रवर्तक, एक उत्साही शिक्षाविद्, एक प्रबल देशभक्त और एक समर्पित समाजसेवी थे। रुचिराम स्वतंत्र सोच तथा प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्ति थे। लगभग दो वर्षों तक भारतीय मौसम विज्ञान विभाग में सेवा करने के बाद वे गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर में नियुक्त हुए जहां से 1918 में वह रसायन विज्ञान के वरिष्ठ प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए। रुचिराम ने अपने बच्चों को खुद सोचने और अपने निर्णय के आधार पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया। बीरबल साहनी ने देशभक्ति की मनोवृत्ति अपने पिता से आत्मसात् की।

साहनी ने अपनी प्राथमिक शिक्षा पहले लाहौर के मिशन स्कूल और बाद में वहीं के सेंट्रल मॉडल स्कूल से प्राप्त की। अपनी स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद साहनी ने लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में प्रवेश लिया, जहां उनके पिता रसायन विभाग के प्रोफेसर के रूप में कार्य कर रहे थे। वनस्पति विज्ञान के उनके अध्यापक और सुपरिचित ब्रायोलॉजिस्ट प्रोफेसर शिवराम कश्यप ने वनस्पति विज्ञान को अपने मुख्य कैरियर के रूप में लेने के लिए साहनी को प्रभावित किया। इस तरह साहनी ने पौधों की दुनिया के साथ अपना मजबूत रिश्ता विकसित कर लिया था। शक्ति एम. गुप्ता ने बीरबल साहनी की जीवनी में लिखा है : ''बीरबल ने काफी कम आयु में ही पौधों के प्रति अपना प्यार प्रदर्शित किया। उनका परिवार आगे के अध्ययन के लिए हरबेरियम बनाने हेतु पौधों को एकत्रित करने या उन्हें बोतलों में संरक्षित करने की उनकी आदत से अच्छी तरह परिचित हो गया था। गवर्नमेंट कॉलेज में छात्र होने के दौरान साहनी को अपने घर के बाहर खुले स्थान के चारों ओर शहर की चारदीवारी के बाहर तथा ब्राडलाफ हाल के आस–पास भ्रमण करने की आदत थी। प्रायः वे ये सोचकर पौधों को उखाड़ लेते थे कि वह उनके लिए नया है और उसे अपने घर लाकर अपने गार्डेन में लगाते थे।'' 1911 में पंजाब विश्वविद्यालय से अपनी स्नातक शिक्षा पूरी करने के बाद वे इंग्लैंड चले गए, जहां उन्होंने कैम्ब्रिज के एमैनुएल कॉलेज में प्रवेश लिया। बीरबल साहनी ने 1913 में प्राकृतिक विज्ञान ट्राइपॉस के भाग–1 में प्रथम श्रेणी प्राप्त की और उन्होंने 1915 में ट्राइपॉस का भाग–2 पूरा किया। लगभग इसी समय उन्होंने लन्दन

विश्वविद्यालय से बी.एस–सी. की डिग्री भी पास की। प्राकृतिक विज्ञान में ट्राइपॉस प्राप्त करने के बाद साहनी ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पुरा–वनस्पति विज्ञानी प्रोफेसर अल्बर्ट चार्ल्स सेवार्ड के प्रेरणाप्रद मार्गदर्शन में अनुसंधान कार्य शुरू किया। जीवाश्म वनस्पतियों पर अनुसंधान के लिए साहनी को, 1919 में लंदन विश्वविद्यालय द्वारा 'डॉक्टर ऑफ साइंस' (डी. एस–सी) की डिग्री प्रदान की गई। जब वह विद्यार्थी थे तभी उन्हें वनस्पति विज्ञान के भारतीय विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप लाउसन की वनस्पति विज्ञान की पुस्तक में संशोधन करने का काम मिला था। लाउसन और साहनी द्वारा लिखित *टेक्स्ट बुक ऑफ बॉटनी* भारतीय विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में व्यापक रूप से पढ़ी जाने वाली पुस्तक बन गई। प्रसिद्ध आकृति विज्ञानी (मार्फोलॉजिस्ट) गोयबेल के साथ म्युनिख, जर्मनी में कुछ समय तक काम करने के बाद साहनी 1919 में भारत लौट आए। उन्होंने लगभग एक वर्ष तक बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और पंजाब विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। इसके बाद वे लखनऊ विश्वविद्यालय के नवसृजित वनस्पति विभाग के पहले प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। इस पद पर वह 1949 में अपनी मृत्यु होने तक रहे। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के भू–विज्ञान विभाग के भी अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। अपनी नियुक्ति के तत्काल बाद ही साहनी ने वनस्पति विज्ञान विभाग को शिक्षण व अनुसंधान के एक सक्रिय केन्द्र के रूप में बदल दिया। विश्वविद्यालय में अपने लंबे शैक्षिक कैरियर के दौरान उन्होंने युवा वनस्पति विज्ञानियों की कई पीढ़ियों को प्रेरणा दी।

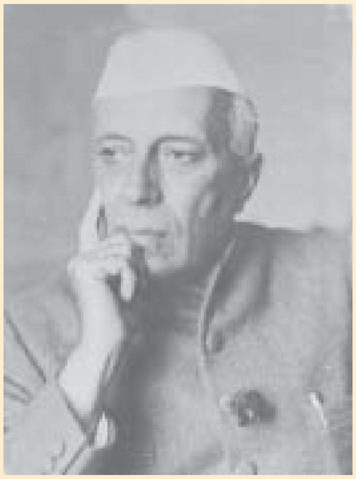

*पं. जवाहरलाल नेहरू*

पुरा–वनस्पति विज्ञान अनुसंधान में उनके योगदान का क्षेत्र इतना विस्तृत था कि भारत में पुरा–वनस्पति विज्ञान का कोई भी पहलू उनसे अछूता नहीं रहा। उनके द्वारा बिहार की राजमहल की पहाड़ियों से बड़ी संख्या में प्राप्त किए गए जीवाश्म वनस्पतियों का जो वर्णन उन्होंने किया है उनमें से सर्वाधिक असाधारण था – अनावृत्तबीजी जीवाश्म का एक नया समूह जिसको उन्होंने 'पेंटोक्सीले' नाम दिया। साहनी ने राजमहल की पहाड़ी से प्राप्त **टीलोफाइलम** और अन्य संबंधित तत्वों का अध्ययन किया और पाया कि तना **ब्यूक्लेंडिया**, पत्ती **टीलोफीइलम** और फूल **विलियमसोनिया** उसी पौधे से संबंधित थे जिसे उन्होंने पुनर्निर्मित कर **विलियमसोनिया सेवर्डियाना** नाम दिया था।

साहनी की पुरातत्व विज्ञान में भी गहरी रुचि थी और उन्होंने इस क्षेत्र में भी कई शोधपत्र प्रकाशित किए। ''प्राचीन भारत में सिक्कों की ढलाई की तकनीक'' पर उनके कार्य ने भारत में पुरातात्विक अनुसंधान के क्षेत्र में नये मानक स्थापित किए। इसके लिए उन्हें 1945 में न्यूमिन्समेटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया का **नेल्सन राइट मेडल** प्राप्त हुआ। सभी प्रकार की भू–विज्ञान संबंधी समस्याओं में भी उनकी रुचि थी। वास्तव में साहनी ने भू–विज्ञान में सम्यक जानकारी प्राप्त कर ली थी। उनका मानना था कि भू–वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के बिना पुरा–वनस्पतिक अनुसंधान हमारे लिए व्यर्थ होगा। पुरा–वनस्पतीय अध्ययन को भूवैज्ञानिक व भौगोलिक दशाओं से जोड़कर पूरा करना चाहिए जिसके अंतर्गत वनस्पति जीवित रहे और मृत हुए। उन्होंने खुद भू–वैज्ञानिक अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। डेकन ट्रैप्स और लवणश्रृंखला की आयु, और हिमालय के उत्थापन का काल जैसी समस्याओं पर उन्होंने समुचित प्रकाश डाला। भू–विज्ञान में स्थायी रुचि और वनस्पति जीवन के अध्ययन में अपने बुनियादी योगदान के कारण सहानी को भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भू–विज्ञान अनुभाग का अध्यक्ष चुना गया। आज के विपरीत, उन दिनों भारतीय विज्ञान कांग्रेस के किसी एक अनुभाग का अध्यक्ष होना एक महान सम्मान और उपलब्धि का विषय था।

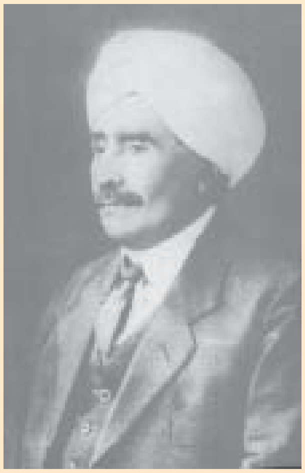

*रुचिराम साहनी*

सितम्बर 1939 में भारत में काम करने वाले पुरा–वनस्पतिविदों की एक समिति गठित की की गई। साहनी इसके संयोजक थे। इसका उद्देश्य था 'भारत में किए गए पुरा–वनस्पति अनुसंधान को समन्वित करना और नियत कालिक रिपोर्ट जारी करना।' समिति द्वारा अपनी पहली रिपोर्ट 'भारत में पुरा–वनस्पति विज्ञान' 1943 में जारी की गई। पुरा–वनस्पतिविदों की समिति के सदस्यों ने मई 1946 में संघ के ज्ञापन–पत्र पर हस्ताक्षर करके एक पुरा–वनस्पतिक सोसाइटी की स्थापना की। पुरा–वनस्पति विज्ञान में अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए 03 जून, 1946 को सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के तहत एक ट्रस्ट का गठन किया गया। साहनी दंपति ने इसके लिए बुनियादी कोष, अचल संपत्ति, पुस्तकालय और जीवाश्म संग्रह दान दिया। सोसाइटी का निर्माण एक ऐसे अनुसंधान संस्थान की स्थापना के लिए किया गया था जिसमें एक व्यापक अंतराष्ट्रीय दृष्टिकोण हो, एक संग्रहालय, एक पुस्तकालय, एक प्रयोगशाला, आवासीय सुविधा और एक अतिरिक्त भवन हो। 10 सितम्बर, 1946 को पुरा–वनस्पतिक सोसाइटी के प्रशासनिक निकाय ने एक संस्थान की स्थापना की। प्रारंभ में इसने लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के एक कमरे से कार्य शुरू किया। सितंबर 1948 में संस्थान को उत्तर प्रदेश सरकार से 3.5 एकड़ भूमि में एक विशाल भवनयुक्त संपत्ति उपहार में मिली। यह 53, विश्वविद्यालय रोड, लखनऊ में स्थित था। 3 अप्रैल 1949 को भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा संस्थान के नए भवन की आधारशिला रखी गयी। साहनी ने अपने उद्घाटन भाषण में (जो उनका अंतिम भाषण भी साबित हुआ, क्योंकि संस्थान के उद्घाटन के एक हफ्ते के भीतर ही उनकी मृत्यु हो गई) कहा था : हमें उम्मीद है कि यह पत्थर अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव और सांस्कृतिक सहयोग की श्रृंखला की एक और कड़ी साबित होगा। अतः यह आधारशिला रखकर आप इस नव संस्थान के एक व्यापक व अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाले अशाजनक भविष्य को प्राप्त करने में हमारी मदद कर रहे हैं जोकि हमारे उद्देश्यों में से एक है। यह किसलिए है, आखिर धर्मनिष्ठ व्यक्ति एक मंदिर में स्थापित पत्थर की पूजा करते हैं, लेकिन एक विचार या एक आदर्श, एक महान् सत्य एक आशा या एक इच्छा उच्च अस्तित्व के लिए, इस दुनिया में या अगली दुनिया में क्या पूजा योग्य नहीं है? और यह आधारशिला किस बात की प्रतीक है? यह प्रतीक है – भूमंडल पर वनस्पति जीवन की प्राचीनता के महान् तथ्य, तथ्यों को अधिक–से–अधिक प्रकाश में लाने की मनुष्य की बुद्धि की चाहत और पौध जगत के विकास के विभिन्न चरणों को अधिक से अधिक क्रमबद्ध रूप से और समझने योग्य क्रम को न केवल उद्घाटित करना – बल्कि इन सत्यों के बारे में उसकी अपनी अल्पज्ञता के विकास का भी प्रतीक है। इसका निर्माण, इसकी सम्पूर्ण साज–सज्जा में त्रुटियों और अपूर्णताओं; इसको तैयार करने में लगा हुआ श्रम, सभी हमारी कुछ नया और कुछ सार्थक सृजित करने की दोषपूर्ण व असहाय कोशिशों का प्रतीक हैं।'' नेहरू ने जो स्वयं विज्ञान के विद्यार्थी रह चुके थे और विज्ञान में उनकी जीवन भर गहरी रुचि रही, इस अवसर पर कहा : मैं वनस्पति विज्ञान पर प्रो. सेवार्ड के व्याख्यान में शामिल हुआ करता था और मैंने कैम्ब्रिज में भू–विज्ञान भी कुछ सीखा। आज की कार्यवाही में मेरे शामिल होने का यह भी कारण है। लेकिन मेरी रुचि का वास्तविक कारण यह है कि प्रो. साहनी अपने भीतर

उस तरह के वैज्ञानिक को प्रतिबिम्बित करते हैं जैसा कि एक वैज्ञानिक को होना चाहिए। उन्होंने अपनी संपूर्ण ऊर्जा को अनुसंधान के लिए समर्पित कर दिया और यह निश्चित है कि वह इसे आगे भी जारी रखेंगे। किसी भी व्यक्ति में यदि इस तरह का गुण हो कि वह अपने कार्यों को इस समर्पण से सही दिशा में करे तो उसका कार्य तो अच्छा होता ही है, व व्यक्ति भी अच्छा होता है।''

साहनी की आकस्मिक मृत्यु के बाद पुरा–वनस्पतीय सोसाइटी के प्रशासनिक निकाय ने उनकी पत्नी सावित्री साहनी को संस्थान के निदेशक के रूप में कार्य करने के लिए अधिकृत किया। उन्हें पुरा–वनस्पतिक सोसाइटी के अध्यक्ष पद का भी दायित्व सौंपा गया। उन्होंने अपने पति के सपने को पूरा करने के लिए कठोर परिश्रम किया। उन्होंने 1949 से 1969 तक संस्थान का प्रबंधन किया। भारी विषम परिस्थितियों के बावजूद उनके उत्साहपूर्ण कार्य के लिए संस्थान ऋणी है। श्रीमती साहनी के योगदान पर टिप्पणी करते हुए शक्ति एम. गुप्ता ने लिखा : ''पैलियोबॉटनिकल इंस्टीट्यूट को डॉ. साहनी ने अपना जीवनपर्यंत अभियान बना लिया था, जिसके लिए जीवन भर उन्होंने कठिन परिश्रम किया। उन्होंने तीसरे दशक के मध्य में ही ऐसा एक इंस्टीट्यूट शुरू करने का विचार बना लिया था। हालांकि उन्होंने ऐसे संस्थान का बीज तो बो दिया था, पर वह उसे पुष्पित होते देखने का सौभाग्य न पा सके। इंस्टीट्यूट को सुदृढ़ आधार पर खड़ा करने और उसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति दिलाने का भार उनकी पत्नी श्रीमती सावित्री साहनी पर रखा गया। उन्होंने प्रशंसनीय ढंग से अपना कार्य किया। आज इंस्टीट्यूट जिस रूप में है, उसके लिए भारी प्रतिकूलताओं के विपरीत किए गये उनके साहसिक कार्यों के प्रति वह बेहद ऋणी है। प्रोफेसर साहनी के अंतिम शब्द थे, 'इंस्टीट्यूट का पोषण करना'।

1952 के अंत तक भवन का प्रमुख हिस्सा बनकर तैयार हो गया। इसका उद्घाटन पं. नेहरू द्वारा ही किया गया, जिन्होंने 1949 में संस्थान की आधारशिला भी रखी थी। संस्थान के नए भवन के उद्घाटन के अवसर पर नेहरू ने कहा था : 'किसी भी देश के वैज्ञानिक ज्ञान में प्रगति, उसके नागरिकों के दिमाग को खोलती है और अंतिम विश्लेषण में यही लाभ महत्वपूर्ण होता है। एक बड़े देश के अपने कई लाभ होते हैं तथा हानियां होती हैं। बड़े देश होने की एक हानि यह है कि वह आत्म–निर्भर होता है, उसके नागरिक अंतर्मुखी हो जाते हैं और अन्य देशों के नागरिकों से कुछ सीखना नहीं चाहते। इससे उनका दिमाग बंद हो जाता है और अंततः वे संकीर्ण दिमाग के व्यक्ति हो जाते हैं। यह सबसे हानिकारक प्रवृत्ति है जो कोई भी देश विकसित कर सकता है। इस समारोह में बड़ी संख्या में शामिल होने लिए आए विदेशी वैज्ञानिकों की उपस्थिति – वैज्ञानिक दुनिया में डॉ. साहनी के सम्मान को प्रदर्शित करती है। दुर्भाग्य से इस संस्थान के शुरू होने के कुछ दिनों बाद ही बहुत कम अवस्था में उनका निधन हो गया। मैं डॉ. साहनी की निष्ठा से प्रभावित था। पुरा–वनस्पतीय विज्ञान के अनुसंधान के लिए एक संस्थान की स्थापना संबंधी डॉ. साहनी के प्रस्ताव की तरफ मैं आकर्षित हुआ क्योंकि मैं उनके कैम्ब्रिज में रहने के दौरान इस विषय में विकसित उनकी रुचि के बारे में जानता था, लेकिन इससे भी प्रमुख कारण था उनका व्यक्तित्व। वह एक संतुलित व्यक्ति थे। वह महान् वैज्ञानिकों जैसे संयमित मिजाज़ वाले थे। ऐसे व्यक्ति सदा ही बहुत कम होते हैं।''

नवम्बर 1969 में पुरा–वनस्पतीय सोसाइटी ने संस्थान पर से अपना अधिकार वापस ले लिया और इसकी परिसंपत्तियों को *बीरबल साहनी पुरा–वनस्पतीय विज्ञान* संस्थान को हस्तांतरित कर दिया। इस तरह बीरबल साहनी पुरा–वनस्पतीय विज्ञान संस्थान भारत सरकार के विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग के नये प्रशासनिक निकाय के प्रबंधन के तहत लाया गया।

विज्ञान में अपनी गहरी रुचि के अलावा साहनी अपने अन्य शौकों में भी लगे रहते थे। शक्ति एम. गुप्ता ने लिखा है : ''प्रोफेसर साहनी की कलाओं में गहरी रुचि के बारे में बहुत लोग नहीं जानते हैं। संगीत से उन्हें गहरा लगाव था और वे सितार एवं वायलिन बजा सकते थे। जब भी उन्हें समय मिलता था, तब उनका एक मुख्य शौक था – चित्र बनाना तथा मिट्टी की मूर्तियां बनाना। उन्हें शतरंज के खेल से भी प्रेम था। उन्हें काफी कम आयु में ही खेलों से लगाव हो गया था और खेलों के प्रति इस रुचि को उन्होंने जीवन के अंत तक बनाए रखा। स्कूल और कॉलेज स्तर पर वह हॉकी तथा टेनिस में बहुत रुचि लेते थे। उन्होंने इन शिक्षा संस्थानों की हॉकी एकादश टीम का प्रतिनिधित्व भी किया। जिस समय वे कैम्ब्रिज में थे, उन्होंने टेनिस में इंडिया मजलिस का प्रतिनिधित्व किया और ऑक्सफोर्ड मजलिस के विरुद्ध खेला था।

साहनी को उनके महत्वपूर्ण अनुसंधानों के योगदान को मान्यता देने हेतु अनेक पुरस्कार एवं सम्मान मिले। उन्होंने 1936 में बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी का बार्क्ले मेडल, 1945 में नूमिस्मैटिक सोसायटी ऑफ इंडिया का नेल्सन राइट मेडल तथा 1947 में सर सी.आर. रेड्डी राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया। साहनी ग्रेट ब्रिटेन की जियोलॉजिकल सोसायटी के फेलो चुने गये थे। उन्होंने बॉटनिकल जर्नल *क्रोनिका बॉटेनिका* के संपादक मंडल में भी काम किया था। वह 1930 और 1935 में क्रमशः कैम्ब्रिज व एम्सटर्डम में आयोजित पांचवें तथा छठें इंटरनेशनल बॉटनिकल कांग्रेस के पैलियोबॉटनी खंड के उपाध्यक्ष रहे थे। 1936 में साहनी को लंदन की रॉयल सोसाइटी का फेलो चुना गया। वह रॉयल सोसाइटी के फेलो चुने गए वह पहले भारतीय वनस्पतिविद् थे। साहनी का नाम प्रस्तावित करने वाले प्रो. सेवार्ड ने साहनी को एक पत्र में स्नेहपूर्वक लिखा : ''विगत बृहस्पतिवार को रॉयल सोसाइटी की समिति की एक बैठक में आपका नाम नये फेलो की सूची में शामिल किया गया है। यह कोई साधारण बात नहीं है, मैं आपको हृदय से बधाई देता हूं ...... जब मैंने पाया कि वनस्पतीय समिति ने आपके नाम के मेरे प्रस्ताव को सहमति दे दी है तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। आप इस स्थान को लंबे समय तक सुशोभित करें, जिसके आप उचित पात्र हैं।'' साहनी 1940 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे। वे नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्सेज, इलाहाबाद के दो बार अध्यक्ष रहे। साहनी इंडियन बॉटनिकल सोसायटी के संस्थापक सदस्य थे। उन्होंने इसके अध्यक्ष के रूप में भी सेवा की। साहनी 1950 में स्टॉकहोम में आयोजित इंटरनेशनल बॉटनिकल कांग्रेस के मानद अध्यक्ष भी चुने गये थे किन्तु उनके असामयिक निधन ने उन्हें शारीरिक रूप से वहां उपस्थित नहीं होने दिया।

1949 में संस्थान की आधारशिला रखे जाने के बाद एक सप्ताह के भीतर ही 9–10 अप्रैल की रात में प्रो. साहनी की मृत्यु हो गई। हम इस आलेख की समाप्ति साहनी के एक विद्यार्थी प्रोफेसर टी.एस. सदाशिवन द्वारा लिखी एक श्रद्धांजलि को उद्धृत करते हुए करना चाहेंगे : ''एक यशस्वी वनस्पतिविद राष्ट्रीय उल्लास की जागरण–वेला में चला गया। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भविष्य की पीढ़ियां प्रोफेसर साहनी को, जर्मनी के ईंगलर, स्ट्रासबर्गर, गोयबेल, सेच्स तथा डी बेरी, फ्रांस के गुइलीरमांड तथा युनाइटेड किंगडम के स्कॉट, सेवार्ड व बोबर जैसी विज्ञान की इन विभूतियों की पंक्तियों में गिनेंगी। इन्हीं वैज्ञानिकों की तरह प्रो. साहनी के दृष्टिकोण तर्कनापरक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय थे। सत्यतः प्रो. साहनी ने अपने पदिचिन्ह रेत पर नहीं बल्कि 'भूवैज्ञानिक समय के पैमाने' पर छोड़े।

## संदर्भ


1. *मेम्वायर्स ऑफ रुचिराम साहनी : पायनियर ऑफ साइंस पॉपुलराइजेशन इन पंजाब*, नरेन्द्र के. सहगल और सुबोध महंती द्वारा संपादित, नयी दिल्ली! विज्ञान प्रसार, 1994
2. बीरबल साहनी : शक्ति एम. गुप्ता, नयी दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1978
3. *बीरबल साहनी : टी.एस. सदाशिवन, बायोग्राफिकल मेम्वायर्स ऑफ फेलोज ऑफ द इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी*, भाग–15, नयी दिल्ली : इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी, 1992
4. *प्रोफेसर बीरबल साहनी*, बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पैलियोबॉटनी, लखनऊ 2002
5. *द डकन ट्रैप्स : एन एपीसोड ऑफ द टेरटियरी एरा* : 1940 में मद्रास में भारतीय विज्ञान कांग्रेस में प्रोफेसर बीरबल साहनी द्वारा दिया गया अध्यक्षीय वक्तव्य, रीप्रिंटेड इन शेपिंग ऑफ इंडियन साइंस : इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन प्रेसिडेंसियल एड्रेस, भाग–1 : 1914–1947 हैदराबाद : यूनिवर्सिटीज प्रेस (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड


**अनुवादक : अरुण कुमार श्रीवास्तव**

◆◆◆

# इलायची

## बहुत अधिक खुशबूदार मसाला

❑ टी.वी. वैंक्टेश्वरन

दुनिया का तीसरा सबसे महंगा मसाला मानी जाने वाली इलायची की उत्पत्ति संभवतः दक्षिण भारत या श्रीलंका में हुई थी। सर्वाधिक सुरुचिपूर्ण खुशबू वाले इस मसाले की ऊंची कीमत इसकी उच्च प्रतिष्ठा को दर्शाती है। यद्यपि इसकी उत्पत्ति दक्षिण भारत व श्रीलंका में हुई पर आज ग्वाटेमाला इलायची जिंजीबर्सिया (अदरक) परिवार से संबंधित होती है। भारतीय इलायची श्रीलंकाई इलायची की तुलना में थोड़ी छोटी लेकिन अधिक सुगंधित होती है, जबकि ग्वाटेमाला की प्रजाति की तुलना में यह काफी उत्कृष्ट होती है।

हिन्दू लोग इलायची को ***पिंड*** (श्राद्ध के दौरान मृतकों को अर्पित किया जाने वाले पवित्र चावल) के अंदर रखते हैं। लगभग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से ही भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत मोटापे को दूर करने तथा पेशाब और त्वचा संबंधी दोषों को दूर करने के लिए इलायची का प्रयोग किया जाता रहा है। कहा जाता है कि 721 ईसा पूर्व में बेबीलोन के राजा के बगीचे में इलायची का पौधा लगाया गया था। प्राचीन मिस्रवासी अपने दांतों की सफेदी कायम रखने और अपने सांस को खुशबूदार बनाये रखने के लिए इलायची चबाते थे। यूनान और रोम के लोगों द्वारा इलायची का इस्तेमाल इत्र में किया जाता था और प्रसिद्ध रोमन एपक्यूर आपिसियस इसके उपयोग की सलाह दिया करते थे। संभवतः यूरोप में इसे 1214 ईस्वी में आयातित किया गया।

### इलायची का रसायनशास्त्र

यद्यपि इलायची की सुगंध उसके बीज के कारण होती है लेकिन आमतौर पर संपूर्ण फली की बिक्री और उसका उपयोग किया जाता है। इलायची की संवेदी गुणवत्ता को आमतौर पर सुगंधित और प्रीतिकर माना जाता है। बीज जमीन पर गिरने के बाद तेजी से अपनी सुगंध खो देते हैं। बीजों से हर वर्ष लगभग 40 प्रतिशत मूलभूत तेल का नुकसान होता है। इसलिए केवल इलायची की पूरी फली बेची जाती है और उपयोग से पहले प्रायः फली को कुचल लिया जाता है। इसके अतिरिक्त हरी फली की सुगंध, पीले या सफेद फली की तुलना में काफी उत्तम कोटि की होती हे।

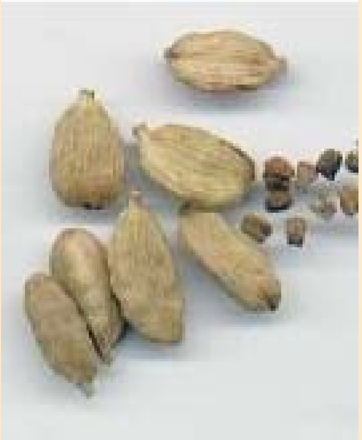

*चित्र 1 : हरे फल और बीज*

इलायची के बीजकोष के विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें नमी 20 प्रतिशत; प्रोटीन 10.2 प्रतिशत; ईथर 2.2 प्रतिशत; धात्विक पदार्थ 5.4 प्रतिशत; अपरिष्कृत रेशे 20.1 प्रतिशत; कार्बोहाइड्रेट 42.1 प्रतिशत; कैल्शियम 0.13 प्रतिशत; फॉस्फोरस 0.16 प्रतिशत; लौह 5 मि.ग्रा./100 मि.ग्रा. होता है। इलायची की सुगंध और रोगनाशक गुण उसके बीजों में पाये जाने वाले वाष्पशील मूलभूत तेल के कारण होता है। दक्षिण भारतीय प्रजाति की तुलना में श्रीलंकाई प्रजाति में तेल की मात्रा काफी अधिक होती है। बीजों में मूलभूत तेल की मात्रा काफी हद तक संग्रहण की दशा पर निर्भर करती है लेकिन यह काफी अधिक 8 प्रतिशत तक हो सकती है। इसमें मुख्यतः टर्पीन तत्व पाया जाता है जिसका मुख्य घटक $C_{10}H_{16}$ है। तेल में $\alpha$– टर्पीनेवल 45 प्रतिशत, मिर्सीन 27 प्रतिशत, लाइमोनीन 8 प्रतिशत, मेंथोन 6 प्रतिशत, $\alpha$– फिलैंड्रीन 3 प्रतिशत, 1.8 – सिनेवल 2 प्रतिशत, सैबिनीन 2 प्रतिशत और हेप्टेन 2 प्रतिशत होता है। अन्य स्रोतों की रिपोर्ट के अनुसार इसमें 1.8 – सिनेवल (20 से 50 प्रतिशत), $\alpha$– टर्पीनेलएसीटेट (30 प्रतिशत), सैबीनीन, लाइमोनीन (2 से 14 प्रतिशत) और बॉर्नीयल पाया जाता है। जावा में पायी जाने वाली गोल इलायची (ए. केपुलगा) के बीज में मूलभूत तेल की मात्रा काफी कम होती है। (2 से 4 प्रतिशत) और तेल में मुख्य रूप से 1.8 सिनेवल (70 प्रतिशत तक) प्लस बीटा – पाइनीन (16 प्रतिशत) पाया जाता है इसके अतिरिक्त इसमें $\alpha$– पाइनीन, $\alpha$– टर्पीनेवल और ह्युमुलीन पाया गया।

इलायची का वाष्पशील घटक रोगाणुरोधी गतिविधि प्रदर्शित करता है और इसके तेल में एफ्लैटॉक्सिन रोधी पदार्थ होता है। इस प्रकार इसमें एफ्लैटॉक्सिंस विश्लेषण के विरुद्ध प्रतिबंधकारी गुण होते हैं। इलायची खराब सांस को रोकता है। यह लौह – प्रचुर खाद्य में लोहे के कड़वे स्वाद को छिपाने के लिए एक एडिटिव के रूप में प्रयोग किया जाता है। इलायची को एक सुगंध उद्दीपक, वायुनाशक और सुगंध कारक के रूप में जाना जाता है। इलायची के साथ अदरक, लौंग और अजवायन को मिलाकर बनाया गया पाउडर एटोनिक अजीर्ण में काफी उपयोगी होता है। इलायची पित्त की थैली से पित्त के स्राव को बढ़ा देता है और संक्रमण व विषाणुओं से बचाता है। इलायची सिनेओल यौगिक का सबसे समृद्ध स्रोत है, जो अरोमा थेरापिस्ट द्वारा बेहोशी रोकने के लिए प्रयोग किये जाने वाले अधिकांश तेलों में होता है। सिनेओल एक प्रबल एंटीसेप्टिक होता है जो दुर्गंध वाले जीवाणुओं को मारता है और अन्य संक्रमण का उपचार करता है। सिनेओल में बलगम निकालने में भी सहायक होता है जिससे सांस के रास्ते को साफ किया जाता है। इलायची में बॉर्नियल यौगिक भी काफी मात्रा में पाया जाता है जिससे पित्त की थैली और गुर्दे में पथरी न बनने देने तथा उसके उपचार में मदद मिलती है। इलायची का बीज एंफीसेमा, छाती की जलन, लैरिंगिटिस और अन्य दशाओं के उपचार के लिए प्रभावी होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि इलायची के तेल की एंटी–स्पैस्मोडिक सक्रियता मस्कारिनिक रिसेप्टर ब्लॉकेज से प्राप्त होती है।

### इलायची के उपयोग

विभिन्न पाक कलाओं में विविध अनुप्रयोगों के अलावा विश्व स्तर पर उत्पादित इलायची की भारी मात्रा में कॉफी बनाने में प्रयोग की जाती है। इलायची की महक वाली काफी जो अरब मेहमानवाजी का प्रतीक बन गयी है, साधारण रूप से कॉफी पाउडर में ताजी इलायची का बीज मिलाकर बनाया जाता है। अरबी बंजारा जनजाति बेदोविंस ने विशेष रूप से निर्मित एक पात्र का निर्माण किया है जो अपनी टोंटी में काफी की कई फलियां रख सकता है ताकि काफी कप या ग्लास में उड़ेलते समय इनके सम्पर्क में रहे।

इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इलायची के उत्पादन का 60 प्रतिशत अरब देशों (दक्षिण–पश्चिम एशिया, उत्तर अफ्रीका) में निर्यात किया जाता है। हालांकि अरब देशों में सारी इलायची सिर्फ कॉफी में ही इस्तेमाल नहीं होती; इसे पाक कला में भी इस्तेमाल किया जाता है। मसालेदार मिश्रण ***बहारत*** और गोश्त व चावल के पकवान जैसे ***कबसाह*** में भारतीय बिरयानी की भांति कई मसालों का प्रयोग किया जाता है। मोरक्को के मिश्रण ***रस अल हनावत*** अथवा प्रसिद्ध इथोपियाई मसाले बेरबेरे में भी इलायची का प्रयोग होता हैं।

भारतीय स्वीट डिश और ड्रिंक में प्रायः इलायची का प्रयोग होता है। अपनी ऊंची कीमत के कारण इसे 'त्यौहार संबंधी' मसाला माना जाता है। मुगल पाक कला में चावल के स्वादिष्ट पकवान 'बिरयानी' और गोश्त के कई पकवानों में

*शेष पृष्ठ... 17 पर जारी*

# कार्ल फ्रेडरिक गॉस

## गणित का राजकुमार

❑ उत्पल मुखोपाध्याय

यह 30 मार्च 1796 का दिन था। ब्रुंसविक जर्मनी के एक युवा व्यक्ति ने गणित में एक ऐसी खोज की जिसने उसके मस्तिष्क की समस्त दुविधाओं को समाप्त कर दिया और उसे गणित की दुनिया में स्थापित कर दिया। वह युवा व्यक्ति थे, अब तक के महानतम गणितज्ञों में से एक – कार्ल फ्रेडरिक गॉस। उन्होंने उस घटना प्रधान दिन में क्या खोज की? हम इसकी बाद में चर्चा करेंगे। इसके पूर्व हम गॉस के जीवन–वृत्त पर एक नजर डालते हैं।

*कार्ल फ्रेडरिक गॉस*

30 अप्रैल, 1777 को, यानी आइज़् न्यूटन की मृत्यु के ठीक 50 साल के बाद, गॉस का जन्म जर्मनी के ब्रुंसविक कस्बे में हुआ था। उसके पिता कई परिश्रमपूर्ण कार्यों से अपनी जीविका चलाते थे – जैसे भवन निर्माण, नहर खुदाई, जल निकासी इत्यादि। स्वाभाविक रूप से वह कठोर प्रकृति के थे। अतः वह अपने पुत्र की प्रतिभा को नहीं पहचान पाये। सौभाग्य से गॉस की माता डोराथिया पूरी तरह भिन्न व्यक्तित्व की थीं। वह 97 वर्ष तक जीवित रहीं और उनका लंबा जीवन अपने प्रतिभाशाली पुत्र के प्रति समर्पित रहा। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम बीस वर्ष अपने पुत्र के निवास में बिताये और अपनी मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व जब उन्होंने अपनी दृष्टि खो दी तो गॉस ने स्वयं उनकी सेवा–सुश्रूषा की।

### होनहार बिरवान

गॉस की प्रतिभा नैसर्गिक थी। केवल तीन वर्ष की आयु में एक दिन जब उसके पिता अपनी साप्ताहिक मजदूरी की गणना कर रहे थे, गॉस ने अपने पिता की गणना में गलती देखी और उसे सही किया। वह सात वर्ष की अवस्था में एक स्कूल में भर्ती हुआ। उसके स्कूल के गणित के शिक्षक श्री बटनर काफी क्रूर प्रकृति के थे। वह अपने विद्यार्थियों को गणित की ऐसी समस्याएं हल करने के लिए देते जिनमें काफी परिश्रमपूर्ण गणनाएं करनी पड़तीं। एक दिन उन्होंने अपने विद्यार्थियों से से 100 तक की सभी पूर्ण संख्याओं का योग करने को कहा। कुछ ही क्षणों में गॉस ने सही–सही जवाब दे दिया जिससे श्री बटनर मंत्रमुग्ध हो गए। जब उन्होंने गॉस द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया की जांच की तो उन्हें यह जानकर काफी आश्चर्य हुआ कि गॉस ने वास्तव में एक समांतर श्रेणी के योग प्राप्त करने का तरीका अपनाया है। इस घटना के बाद वह शिक्षक गॉस से काफी स्नेह रखने लगे और शीघ्र ही उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि उनके पास गॉस को पढ़ाने के लिए अब कुछ नहीं बचा है। श्री बटनर के एक पुराने साथी जे.एम. बारटेल्स की गणित में काफी रुचि थी। इसके बाद से गॉस और बर्टेल्स ने साथ–साथ अध्ययन प्रारंभ किया और शीघ्र ही स्कूली छात्र गॉस के मस्तिष्क में नये–नये विचार आने प्रारंभ हो गये।

सिर्फ बारह साल की अवस्था में गॉस ने इक्लुडियन ज्यामिति के प्रमेयों की आलोचना प्रारंभ कर दी और तेरह साल की अवस्था में उसने नॉन–इक्लुडियन ज्यामिति की आधारशिला रखी। उसने अनंत श्रृंखला के अभिसारण पर प्रवीणता प्राप्त की और सिर्फ पंद्रह साल की अवस्था में सामान्य बाइनोमियल थ्योरम को सिद्ध करके दिखाया। गॉस के इन कार्यों ने ब्रुंसविक के ड्यूक फर्डिनैंड का ध्यान आकर्षित किया और जब गॉस ने कैरोलीन कॉलेज में प्रवेश लिया तो ड्यूक ने उसके अध्ययन का पूरा खर्च उठाने की जिम्मेदारी ली। कैरोलीन कॉलेज में अपने तीन वर्षों के अध्ययन के दौरान गॉस ने 'प्रिंसपिया ऑफ न्यूटन (1642–1727) पुस्तक पढ़ी और कई अन्य प्रसिद्ध गणितज्ञों जैसे यूलर (1707–1783) और लैगरेंज (1736–1813) के मुख्य कार्यों से परिचित हुआ।

### बीज से वृक्ष तक

1795 में अपनी कॉलेज की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद गॉस काफी दुविधा में था। उसे गणित की भांति ही अन्य कई विषयों में प्रवीणता हासिल थी, जिसके कारण वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि विश्वविद्यालय स्तर पर कौन सा विषय ले। 30 मार्च 1796 को गॉस ने पूर्व उल्लिखित खोज की और गणित को भविष्य में अध्ययन के लिए चुना। उस विशेष दिन गॉस ने इक्लुडियन विधि से 17 किनारों वाले नियमित बहुभुज के निर्माण का तरीका विकसित किया, जिसके लिए उसने सिर्फ एक पैमाने और कंपास का प्रयोग किया। प्राचीन यूनानियों ने इयूक्लुडियन विधि से त्रिभुज ओर पंचभुज के निर्माण का तरीका खोजा था और इसके बाद से गणितज्ञों द्वारा यह माना जाता था कि इयूक्लुडियन विधि से त्रिभुज और पंचभुज के अलावा अन्य कोई नियमित बहुभुज नहीं निर्मित किया जा सकता। लगभग दो हजार साल की लंबी अवधि के बाद 19 साल के एक युवक ने यह प्रमाणित किया कि उक्त मान्यता गलत थी। अपनी इस खोज से काफी प्रसन्न होकर गॉस ने इच्छा जाहिर की कि उसकी कब्र में 17 किनारों वाला एक नियमित बहुभुज उत्कीर्ण किया जाय। यहां यह उल्लेख करना जरूरी होगा कि प्रसिद्ध यूनानी गणितज्ञ आर्कमिडीज ने (287 ईसा पूर्व से 212 ईसा पूर्व) सिद्ध किया था कि यदि काई अर्द्धवृत्त किसी सीधे गोलीय बेलन के भीतर स्थित हो तो इन तीनों के आयतन का अनुपात 1 : 2 : 3 होता है। आर्कमिडीज की इच्छा के अनुसार उनकी कब्र के पत्थर पर एक अर्द्धवृत्त के भीतर एक शंकु उत्कीर्ण किया गया जो खुद एक बेलन के भीतर उत्कीर्ण था। संभवतः आर्कमिडीज की इच्छा को ही देखते हुए गॉस ने अपनी अंतिम इच्छा जाहिर की थी। यद्यपि गॉस की इच्छा को ठीक–ठीक नहीं पूरा किया जा सका लेकिन उनके सम्मान में ब्रुंसविक में एक स्मारक स्थापित हुआ, जिसमें 17 किनारों वाला एक नियमित बहुभुज उत्कीर्ण किया गया। वह विशेष दिन (30 मार्च, 1796) गॉस के जीवन में एक अन्य कारण से भी महत्वपूर्ण था – उसी दिन से गॉस ने अपना 'नोटिजेन जर्नल' लिखना प्रारंभ किया था जो उसके वैज्ञानिक अनुसंधानों का रिकॉर्ड रखने वाली डायरी थी। उस डायरी के सिर्फ 19 पृष्ठों में ही उसने अपने द्वारा खोजे गये 146 गणितीय परिणामों को रिकॉर्ड किया। उस डायरी में पहली प्रविष्टि 30 मार्च, 1796 की खोज थी और अंतिम प्रामाणिक खोज की प्रविष्टि 9 जुलाई, 1814 को दर्ज की गयी। गॉस की मृत्यु के 43 साल बाद समूची दुनिया के गणितीय समुदाय को 'नोटिजेन जर्नल' के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। तब वह उसके पोते के पास थी। प्रसिद्ध गणितज्ञ फेलिक्स क्लेइन (1849–1925) ने 1901 में डायरी की विषय वस्तु को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि भारतीय गणितज्ञ रामानुजन (1887–1919) ने भी अपने गणितीय परिणामों को तीन नोटबुकों में दर्ज कर रखा था। रामानुजन की वे तीनों नोटबुक अब मुंबई के टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान में रखी हैं।

गॉस 1795 से अक्टूबर 1798 तक गॉटिंजेन विश्वविद्यालय के विद्यार्थी रहे। वे तीन साल गॉस के जीवन के काफी सफल वर्ष साबित हुए। गॉस की विश्वविद्यालयी शिक्षा का पूरा खर्च फर्डिनंड के ड्यूक वहन कर रहे थे। अतः गॉस

के लिए अपना पूरा ध्यान अपने अध्ययन पर लगाना आसान हो गया। इन तीनों वर्षों में गॉस ने संख्या सिद्धांत में बुनियादी अनुसंधान किया, जो गॉस के पूरे जीवन भर उसका पसंदीदा क्षेत्र रहा। 1798 से पहले गॉस ने अपना पहला और संभवतः सबसे अच्छा कार्य ''डिस्क्विजिशंस अर्थमेटिका'' लगभग पूर्ण कर लिया। यह पुस्तक 1801 में प्रकाशित हुई और गॉस ने इस पुस्तक को ड्यूक फर्डिनंड को समर्पित किया।

### फूल पूरी तरह खिला

गॉटिंजेन छोड़ने के बाद गॉस ने कुछ समय प्राइवेट ट्यूशन से अपनी जीविका चलानी चाही लेकिन वह इसमें असफल रहा। एक बार पुनः ड्यूक ने उसे बचाया। उसने गॉस के लिए कुछ मासिक अनुदान की व्यवस्था की। गॉस ने पहली बार 1805 में विवाह किया और 1806 में ड्यूक की मृत्यु के बाद वह आर्थिक संकट में फंस गया। लेकिन तब तक गॉस की ख्याति पूरे यूरोप में फैल चुकी थी और 1807 में सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय ने उसे प्रोफेसर के पद का प्रस्ताव दिया। लेकिन जर्मनी के कुछ प्रभावशाली लोगों के आग्रह पर गॉस जर्मनी में रुका रहा और उसने गॉटिंजेन वेधशाला के निदेशक का पदभार संभाला तथा इसके बाद खगोल विज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त हुआ।

गॉस ने अपना शेष जीवन गॉटिंजेन में बिताया। सिर्फ एक अवसर को छोड़कर जब वह एक सेमिनार में भाग लेने के लिए बर्लिन गया, उसने कभी भी गॉटिंजेन नहीं छोड़ा। 1821 से 1848 तक गॉस ने हनोवर और डेनमार्क सरकार के वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में कार्य किया। इस अवधि के दौरान गॉस द्वारा प्रदर्शित कार्य की प्रकृति ने अवकल ज्यामिति में बुनियादी अनुसंधान कार्य की आधारशिला रखी। अपने जीवन के अंतिम बीस वर्षों में गॉस ने एनालिटिकल डॉयनामिक्स और आप्टिक्स में महत्वपूर्ण अनुसंधान कार्य किया। 1830 के लगभग उसने भौतिकी की दो ऐसी शाखाओं, विद्युत एवं चुंबकत्व की तरफ भी ध्यान दिया जो अभी विकास की प्रक्रिया में थीं।

बुनियादी रूप से एक गणितज्ञ और सैद्धांतिक भौतिकविद होने के बावजूद गॉस प्रायोगिक विज्ञान में भी समान रूप से निपुण था। उसने वैज्ञानिक व खगोलीय उपकरणों की खोज की जिनका हेलियोट्राप एवं बाइफिलर मैग्नेटोमीटर नाम रखा गया। अपने सहयोगी विलहेल्म वेबर (1804–1891) के साथ कार्य करते हुए गॉस ने विद्युत से संचालित टेलीग्राफ का निर्माण किया जो परंपरागत टेलीग्राफ से काफी अच्छा था। लंबे समय तक उसने चुंबकत्व पर उच्च स्तर का सैद्धांतिक व प्रायोगिक अनुसंधान कार्य जारी रखा। इस कारण ही प्रसिद्ध ब्रिटिश भौतिकविद् जेम्स क्लर्क मैक्सवेल (1831–1879) ने अपनी पुस्तक 'इलेक्ट्रिसिटी एंड मैग्नेटिज्म' में लिखा कि इस्तेमाल किये गये उपकरण, प्रेक्षण और गणनाओं, उक्त तीनों दृष्टिकोण से गॉस के चुंबकत्व पर अनुसंधान ने समूचे विज्ञान को पुनर्निर्मित कर दिया। अतः यह उपयुक्त ही है कि चुंबकीय तीव्रता की इकाई का नाम 'गास' रखा गया। अपने पूरे जीवन भर गॉस स्वस्थ रहा और उसने अपनी सोचने की क्षमता बरकरार रखी। 23 फरवरी, 1855 को 78 वर्ष की अवस्था में गॉस का निधन हो गया।

निकोलाई लोब्वेवस्की

## गणितीय व अन्य वैज्ञानिक कार्य

### बीजगणित का बुनियादी प्रमेय

1799 में गॉस ने हेल्मस्टैड्ट विश्वविद्यालय से 'डाक्टरेट' डिग्री प्राप्त की। अपने 'थीसिस' में उन्होंने सिद्ध किया कि वास्तविक या काल्पनिक गुणांक वाला प्रत्येक समीकरण कम से कम एक वास्तविक या काल्पनिक 'मूल' रखता है। इस समय इस प्रमेय को बीजगणित का बुनियादी प्रमेय (फंडामेंटल थ्योरम ऑफ अलजेबरा) कहते हैं।

### फलन एवं अनंत शृंखला का सिद्धांत

गॉस ने फलन एवं जटिल चर के सिद्धांत में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1811 में उन्होंने एक प्रमेय प्रस्तावित किया जिसने जटिल चरों के फलन के सिद्धांत की आधारशिला रखी और 19वीं शताब्दी के गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। लेकिन यह खोज उस समय के अधिकांश गणितज्ञों के लिए अज्ञात रही। इसके कुछ दिनों के बाद ही प्रसिद्ध गणितज्ञ अगस्टस कॉची (1789–1867) ने उस प्रमेय की पुनः खोज की और तबसे यह प्रमेय कॉची के प्रमेय के नाम से जाना जाता है।

इसके एक साल के बाद गॉस ने हाइपराजिमेट्रिक शृंखला और उससे जुड़े अवकल समीकरण की खोज की। उसने उस शृंखला के अभिसारण पर भी चर्चा की।

### खगोल विज्ञान के क्षेत्र में कार्य

वर्ष 1801 के पहले दिन गियुस्पे पियाजी ने पहले छुद्रग्रह सायरस की खोज की। उस समय उस छुद्रग्रह को सिर्फ 41 दिन तक देखना संभव हो सका। इसके बाद सायरस कुछ महीनों के लिए दृष्टि से ओझल हो गया। लेकिन इस कम अवधि के अवलोकन में ही गॉस ने सायरस की कक्षा की गणना कर ली। छुद्रग्रह को पुनः देख पाना इस गणना पर ही निर्भर था। गॉस द्वारा की गयी गणना की यथार्थता तब प्रमाणित हुई जब अक्टूबर, 1801 में खगोलविदों द्वारा पुनः सायरस उसी स्थान पर देखा गया जहां गॉस की गणना से अनुमान लगाया गया था।

अगले छह वर्षों में तीन नये छुद्रग्रह खोजे गये और गॉस की गणना विधि की यथार्थता पुनः प्रमाणित हुई। इसके बाद 1809 में गॉस ने खगोल विज्ञान पर अपने अनुसंधान को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था, ''थ्योरिया मोटस कार्पोरम कोएलेस्टियम''। इस पुस्तक में ग्रहों और धूमकेतुओं की कक्षाओं की विस्तृत चर्चा की गयी है और इसे गॉस का दूसरा सबसे अच्छा कार्य माना जाता है। यह पुस्तक खगोल विज्ञान में गणित के अनुप्रयोग के क्षेत्र में एक मील का पत्थर है।

### संख्यात्मक विश्लेषण के क्षेत्र में कार्य

गॉस ने संख्यात्मक विश्लेषण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1814 में उन्होंने एक पूर्ण संख्या को एक रेखीय फलन द्वारा विस्थापित करके उस निश्चित पूर्ण संख्या के मूल्यांकन का तरीका विकसित किया। इसके अलावा उसने एक रेखीय युगपत समीकरण प्रणाली को हल करने के लिए दो भिन्न तरीके खोजे। इन दोनों में से एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष तरीका है। 1874 में सीडेल ने अप्रत्यक्ष तरीके को संवर्द्धित किया और उसे वर्तमान समय में गॉस–सीडेल पद्धति के रूप में जाना जाता है। 1812 में गॉस ने एक चार्ट का निर्माण किया जिसे 'गॉसियन लॉगरिद्म' के नाम से जानते हैं। यह चार्ट नौकायन की विभिन्न समस्याओं को हल करने के लिए नाविकों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है।

### अवकल ज्यामिति के क्षेत्र में कार्य

गॉस का तीसरा प्रमुख कार्य था, 1827 में प्रकाशित ''डिसक्वीजिसंस जनरेल्स सरका सुपरफिसियस कर्वास''। इस पुस्तक में गॉस ने त्रिवीमीय समतल की अवकल ज्यामिति के बारे में ठोस चर्चा की, साथ ही साथ समतलों के बारे में एक नया विचार प्रस्तावित किया जिसे बाद में उसके विद्यार्थी बर्नहार्ड रीमैन (1826–1866) के कार्यों से एक नया आयाम प्राप्त हुआ।

### नॉन – इयूक्लिडियन ज्यामिति की खोज

19वीं शताब्दी के दूसरे दशक में निकोलाई लोब्वेवस्की (1792–1856) और जैनोस बोलयाई (1802–1860) ने अलग–अलग स्वतंत्र रूप से

नॉन–इयूक्लिडियन ज्यामिति की खोज की। इसके काफी पहले ही गॉस ने लगभग उसी प्रकार का निष्कर्ष निकाला था लेकिन आलोचना के डर से उसने अपना परिणाम प्रकाशित नहीं किया। बोलयाई और लोब्वेवस्की की अधिकांश गणितज्ञों ने हंसी उड़ायी क्योंकि वे अपने अनुसंधान का महत्व प्रदर्शित करने में असफल रहे थे। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि अपने स्कूल के दिनों से ही गॉस ने नान–इयूक्लिडियन ज्यामिति पर चिंतन शुरू कर दिया था। 1792 में अपने मित्र को लिखे एक पत्र में गॉस ने नॉन–इयूक्लिडियन ज्यामिति संबंधी अपने विचारों की चर्चा की थी। इसके बाद उसने नॉन–इयूक्लिडियन ज्यामिति की खोज की दिशा में कार्य किया।

### *संख्या सिद्धांत पर कार्य*

इसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि संख्या सिद्धांत गॉस का पसंदीदा क्षेत्र था। उन्होंने संख्या सिद्धांत पर अपने कार्य के परिणाम को 1801 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ''डिसक्वीजिशंस अर्थमेटिका'' में लिखा है। इस पुस्तक में सात खंड हैं और सातवें खंड में गॉस ने इयूक्लिडियन पद्धति से 17 किनारों वाले एक बहुभुज के निर्माण के लिए अपने तरीके की चर्चा की है। इस सातवें खंड के परिणाम को गॉस के द्वारा संख्या पद्धति पर सर्वश्रेष्ठ कार्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।

### उपसंहार

गॉस उन दुर्लभ गणितज्ञों में से एक थे जिन्होंने प्रयासपूर्वक गणित की एक शाखा से दूसरी शाखा में कार्य करते हुए अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया। इस अर्थ में उन्हें आर्किमिडीज, न्यूटन, इयूलर इत्यादि की श्रेणी में रखा जा सकता है। गॉस का कार्यक्षेत्र इतना व्यापक था कि एक छोटे आलेख में उनके समस्त कार्यों की चर्चा करना संभव नहीं है। उनके बारे में केवल यही कहा जा सकता है कि वह बहुमुखी गणितज्ञों की शृंखला की अंतिम कड़ी थे। उनके द्वारा किये गये कार्यों के परिणाम ने आगामी पीढ़ियों के गणितज्ञों के लिए प्रकाश स्तंभ की भांति कार्य किया। इस कारण ही अपने समकालीन गणितज्ञों के लिए वह गणित का राजकुमार था।

### विस्तृत जानकारी के लिए पढ़ें :


1. स्टुअर्ट हॉलिंगडेल : *मेकर्स ऑफ मैथमेटिक्स*, पेंगुइन बुक्स, 1989
2. व्लादीमिरोव, मिसिकियेविच एंड हॉर्स्की : *स्पेस टाइम ग्रेविटेशन*, मीर पब्लिशर्स, 1987
3. देवब्रत दासगुप्ता : *बिजानर सैडॉक* (तीसरा खण्ड), श्रीभूमि पब्लिशिंग कंपनी, 1994


**अनुवादक : दिनेश अग्रहरि**

◆◆◆

---

*पृष्ठ ...14 का शेष*

इलायची का प्रयोग व्यापक रूप से होता है। आमतौर पर इलायची की फली को प्याज, तेजपत्ता एवं अन्य मीठे मसाले के साथ उनकी सुगंध को बढ़ाने के लिए पीसा जाता है। इलायची को उत्तर भारत के गरम मसाले में मिलाया जाता है, विशेषकर कश्मीर में जहां पर मुगल प्रभाव काफी मजबूत है। कश्मीरी लोग इलायची की महक वाली मीठी हरी चाय पसंद करते हैं, जिसे श्रीनगर के मशहूर हाउसबोट्स में अनिवार्य रूप से पेश किया जाता है। श्रीलंका में इलायची की फली को दालचीनी के साथ गरम बीफ या चिकन करी में मिलाया जाता है। इलायची के सुगंध वाली मिठाइयां पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में पायी जाती हैं जबकि यूरोप में इलायची का प्रयोग कुछ रेसिपी जैसे जर्मन ***लेबकुचेन*** के अलावा काफी कम होता है। लेकिन स्कैंडिनेवियाई देशों में इलायची न केवल कुकीज और स्वीट ब्रेड के लिए लोकप्रिय है बल्कि पैस्ट्रीज और सासेज में भी प्रयुक्त होता है।

*चित्र 2 : फूल और अपरिपक्व पौधा*

### इलायची का पौधा

इलायची एक सदाबहार पौधा होता है जिसके जड़मूल से 1 से 6 मीटर ऊंचे, सीधे, पत्तियों से भरे कई तने निकले होते हैं। इन तनों में 30 सेमी. से 100 सेमी. लंबी दीर्घवृत्ताकार या लगभग आयताकार पत्तियां होती हैं। तने के आधार में निकले हुए डंठल (60 सेमी. से 120 सेमी. लंबी) से फूल निकलते हैं, ये डंठल बिल्कुल सीधे होते हैं। फूल लगभग 8 सेमी. लंबे, सफेद अथवा हल्के हरे रंग के होते हैं, जिनके केन्द्रीय भाग बैंगनी होते हैं। ये फूल द्विलिंगी होते हैं लेकिन स्वतः बंध्य भी हो जाते हैं और क्रम से खुलते हैं, आधार से शीर्ष की ओर।

इसका फल तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता, जब तक कि पौधा अपनी अधिकतम ऊंचाई को प्राप्त नहीं कर लेता। इसमें चार साल का समय लगता है। इलायची का फल 10 से 15 मिमी. तक लंबा, अण्डाकार और किनारों पर नुकीला होता है। यह हल्के पीले रंग का और 3–कोशीय होता है जिसमें चमड़े के समान सख्त लगभग स्वादहीन छिलका और एक केंद्रीय बीजकोश होता है। इसके बीज लगभग 4 मिमि. लंबे, लाल–भूरे रंग के, कोणीय, खुरदरे, नाभि पर दबे हुए और एक पतले झिल्लीदार एरिलस से घिरे होते हैं। इनमें एक सहज गंध और तीक्ष्ण स्वाद होता है। लगभग 75 प्रतिशत बीज में ढके रहने पर वास्तविक गुण होते हैं जबकि शेष जिनमें कम महक या स्वाद होती है अनुपयोगी होते हैं। छिलका हटा देने पर बीज की सुगंध और कपूर जैसा तीक्ष्ण स्वाद समाप्त होने लगता है।

यह दक्षिण भारत एवं श्रीलंका के नम सदाबहार जंगलों में पाया जाता है। म्यामांर, दक्षिण–पूर्व एशिया और मलय प्रायद्वीप में भी उसके पाये जाने की सूचना है। यह पश्चिमी घाट के जंगलों में 2500 से 500 फीट की ऊंचाई पर पाया जाता है। यह प्रायः उन स्थानों पर पाया जाता है जहां प्राकृतिक घटनाओं या मानवीय कार्यों के द्वारा आसमान में वृक्षों की सघनता कम हो जाती है। विकास के दृष्टिकोण से इसे इस क्षेत्र के सदाबहार जंगलों के प्राथमिक–उत्कर्ष चरण में एक निर्माता तल के रूप में जाना जाता है। इलेटैरिया – कार्डामॅम–रीपेंस मालाबार तट के पर्वतीय भागों में पाया जाता है, जहां यह खेती करने पर या बिना खेती किए बढ़ता है। खेती वाले पौधों से आमतौर पर इलायची का व्यावसायिक उत्पादन होता है। इलायची को जंगली पौधों से एक सीमित जंगली उत्पाद के रूप में भी इकट्ठा किया जाता है, जबकि यह चाय और कॉफी जैसे बगानों में ही उगता है।

इलायची का पौधा औसत प्राकृतिक छाया में फलता–फूलता है पर सूर्य के प्रकाश के प्रति संवेदनशील होता है। अतः इलायची की खेती करने पर यह ध्यान रखना चाहिए कि लंबे वृक्ष लगाकर या अन्य किसी तरीके से क्षेत्र में छाया बरकरार रखी जाए। इलायची को बीज प्रत्यारोपण या राइजोम के टुकड़े से कायिक प्रवर्धन द्वारा उगाया जा सकता है।

सम्प्रति, इलायची की खेती भारत, नेपाल, श्रीलंका, ग्वाटेमाला, मेक्सिको, थाइलैंड और मध्य अमेरिका में की जाती है। भारतीय इलायची काफी उम्दा गुणवत्ता वाली मानी जाती है : मालाबार प्रकार, आकृति में अधिक गोलाकार और मधुर स्वाद वाली होती है; मैसूर प्रकार, तिकोनी और उभरी हुई तथा हल्की कड़वे स्वाद वाली होती है।

**अनुवादक : दिनेश अग्रहरि**

◆◆◆

# विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

## ऑप्टक फाइबर से होगी सौर शल्यचिकित्सा

सौर ऊर्जा, ऊर्जा का सस्ता और प्रचुर स्रोत है। अब इस ऊर्जा का इस्तेमाल शल्य चिकित्सा में भी हो सकेगा। इजरायली भौतिकविदों द्वारा बनाया गया वर्किंग प्रोटोटाइप यंत्र शल्य चिकित्सकों को उपलब्ध कराने के लिए फाइबर आप्टिक केबल पर संकेंद्रित सूर्यप्रकाश डालता है। इजराइल की बेन–गुरियन यूनिवर्सिटी के जेफरी गोर्डन और उनके सहयोगियों को उम्मीद है कि उनका यह प्रयास एक दिन लीवर में ट्यूमर को नष्ट करने जैसे ऑपरेशनों में इस्तेमाल होने वाले खर्चीले सर्जिकल लेजर्स को प्रतिस्थापित कर देगा।

सर्जिकल ''सनट्रैप'' के लिए प्रकाश शीशे के 20 सेंटीमीटर के पैराबोलिक डिश द्वारा एकत्रित किया जाता है। प्रकाश का यह संकेंद्रण उस समय ऑप्टिकल फाइबर के अगले सिरे पर केंद्रित होता है। यह फाइबर 100 मीटर की लम्बाई तक लम्बा होता है। यह उपकरण सर्जिकल लेजर के एक तिहाई से कम प्रकाश फ्लक्स घनत्व को भेजता है जो 100 वाट प्रति वर्ग किलोमीटर का विशिष्ट निर्गम रखता है।

गोर्डन ने कहा कि अपने क्लीनिकल परीक्षण में हमने पाया कि नष्ट लीवर कोशिकाओं के लिए न्यूनतम प्रकाश सघनता मात्र 3 वाट प्रति वर्ग मिलीमीटर थी। हम कोशिकाओं में 60 डिग्री सेंटीग्रेट के तापमान तक पहुंचने में सक्षम थे, जो उन्हें मारने के लिए पर्याप्त है।

*स्रोत : न्यू साइंटिस्ट, जुलाई 2003*

## धूम्रपान करने वालों के फेफड़े के कैंसर को प्रकट कर सकने वाला रक्त परीक्षण

धूम्रपान फेफड़े के कैंसर का एक मुख्य कारण है, जो सभी तरह की कैंसर मौतों में से 30 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार होता है। लेकिन नयी शोध से संकेत मिलता है कि अन्यों की तुलना में कुछ धूम्रपान करने वालों को रोग का शिकार बनने का सर्वाधिक खतरा होता है। जर्नल ऑफ द नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार हाल ही में खोजे गये जेनेटिक मार्कर के मुताबिक अन्यों की तुलना में धूम्रपान करने वालों में फेफड़े का कैंसर होने की संभावना 10 गुना अधिक होती है।

सूर्य की रोशनी से लेकर सिगरेट पीने तक रोजमर्रा के जीवन में ऐसी असंख्य चीजे होती हैं जो डीएनए घटा सकती हैं, पर हमारा शरीर इस क्षति को कम करने का तंत्र विकसित कर लेता है। इजराइल की विज़मान इंस्टीट्यूट के जवी लिवनेह और उनके सहयोगियों ने ओजीजी–1 के नाम से परिचित एंजाइम की भूमिका का अध्ययन किया, जो फेफड़े के कैंसर को रोकने के क्रम में ऑक्सीजन मूलकों द्वारा क्षतिग्रस्त किए जा चुके डीएनए अंगों को अलग कर देता है। शोधार्थियों ने पाया कि केवल चार प्रतिशत सामान्य जनसंख्या की तुलना में फेफड़े के कैंसर से पीड़ित लोगों में 40 प्रतिशत में ओजीजी–1 का स्तर निम्न था। इसके अलावा वैज्ञानिकों ने पाया कि उन धूम्रपान करने वालों की तुलना में जिनकी ओजजी–1 सक्रियता सामान्य थी, धूम्रपान करने वाले कम ओजीजी–1 सक्रियता वालों के इस रोग से प्रभावित होने की संभावना 5 से 10 गुना होती है। यह खतरा तब120 गुना बढ़ जाता है जब धूम्रपान न करने वाले सामान्य एंजाइम स्तरों वाले समूह से तुलना की जाती है।

एक सामान्य रक्त परीक्षण का इस्तेमाल करके ओजीजी–1 के स्तरों को जांचा जा सकता है। लेखक ऐसा सुझाव देते हैं कि यह नया मार्कर छिपकर धूम्रपान करने वाले लोगों की आदत छुड़ाने के लिए एक बड़ी प्रेरणा है।

*स्रोत : साइंटिफिक अमेरिकन, सितम्बर 2003*

**संकलन : कपिल त्रिपाठी**

◆◆◆

---

विज्ञान रिपोर्ट..... (पृष्ठ 1 का शेष)

लिए विज्ञान शिक्षा संबंधी विषय है। उनका मानना है कि विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिए और प्रयास होना चाहिए ताकि लोगों में विज्ञान विरोधी या छद्म विज्ञान वाला रवैया न विकसित हो सके। पद्मश्री प्रोफेसर ए.के. बरुआ ने उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय संबोधन में उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारत 2020 तक विकसित राष्ट्र की श्रेणी में आ जाएगा। साइंस एसोसिएशन ऑफ बंगाल के सचिव डॉ. एस रॉय चौधुरी के धन्यवाद ज्ञापन के साथ उद्घाटन सत्र की समाप्ति हुई।

यह कार्यशाला दो दिन में कुल पांच सत्रों में विभाजित थी। पहले सत्र का विषय था – 'बांग्ला में विज्ञान संचार : सामान्य दृष्टिकोण'। पश्चिम बंगाल विज्ञान मंच के अध्यक्ष प्रोफेसर शंकर चक्रवर्ती ने इस सत्र की अध्यक्षता की। वक्ताओं ने बांग्ला भाषा में विज्ञान संचार की समस्याओं और संभावनाओं पर विचार–विमर्श किया। दूसरे सत्र का विषय था – 'प्रिंट मीडिया में विज्ञान संचार'। इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रख्यात विज्ञान पत्रकार समरजीत कार ने कहा कि यही वह समय है जब विज्ञान लेखकों को गहराई से यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि आम आदमी विज्ञान संचार के प्रयासों में इतनी रुचि क्यों नहीं दिखाता। उनका कहना था कि संचारकों में विशेषज्ञ संचार कौशल का अभाव समस्या की जड़ है। उनका तर्क था कि यदि विज्ञान लेखक अपने लक्षित पाठक वर्ग तक पहुंचने के लिए गंभीर है तो उन्हें वास्तव में लोगों के ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करना चाहिए।

अगले सत्र का विषय था : 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विज्ञार संचार'। दूरदर्शन के पूर्व विज्ञान कार्यक्रम निर्माता और व्यापक रूप से लोकप्रिय कार्यक्रम 'क्वेस्ट' के निर्माता डॉ. आलोक सेन ने सत्र की अध्यक्षता की। उन्होंने कहा कि मीडिया के व्यावसायीकरण ने विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रम को काफी कठिन बना दिया है। उन्होंने कहा कि मीडिया के प्रबंधक अधिक से अधिक विज्ञापन प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं और वे विज्ञान संचार के प्रति उतना ध्यान नहीं देते। डॉ. अमित चक्रवर्ती ने कहा कि ''टेलीविजन के द्वारा विज्ञान संचार भी इसी बीमारी से ग्रस्त है। एक निजी चैनल पर किए गए हालिया सर्वेक्षण से पता चलता है कि इस वर्ष मई व जून में इसके द्वारा प्रसारित 600 समाचारों में से केवल 10 विज्ञान व प्रौद्योगिकी से संबंधित थे।

चौथे सत्र का विषय था – ''विज्ञान संचार : सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं की भूमिका''। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. सुबोध महंती ने की और त्रिपुरा व पश्चिम बंगाल सरकार के विज्ञान व प्रौद्योगिकी परिषद के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। उन्होंने विज्ञान के लोकप्रियकरण में सरकारी एजेंसियों एवं गैर सरकारी संस्थाओं दोनों के संयुक्त प्रयास में अपना विश्वास व्यक्त किया।

अंतिम सत्र का विषय था – ''बांग्ला में विज्ञान संचार का भविष्य''। प्रख्यात वैज्ञानिक और ''इंडियन बायोलॉजिस्ट'' के संपादक प्रोफेसर टी.एन. दास ने सत्र की अध्यक्षता की। इसमें भाग लेते हुए बिड़ला औद्योगिक एवं प्रौद्योगिकी संग्रहालय के निदेशक श्री एस. गोस्वामी ने कहा कि : ''जीवन विज्ञान पर आधारित होता है जो प्रकृति में प्रत्येक जगह पाया जाता है''। अन्य वक्ताओं ने क्षेत्रीय भाषाओं के द्वारा विज्ञान लोकप्रियकरण के उज्ज्वल भविष्य की आशा प्रकट की।

दूसरे दिन दोपहर के भोजन के बाद सभी भागीदार एकत्रित हुए और उन्होंने विज्ञान प्रसार द्वारा निर्मित किए जाने वाले बांग्ला में प्रस्तावित विज्ञान धारावाहिक में रुचि दिखायी। यह निर्णय लिया गया कि यह धारावाहिक विज्ञान के इतिहास और वैज्ञानिकों के योगदान पर आधारित होगा।

◆◆◆

## विज्ञान प्रसार में हिन्दी दिवस

विज्ञान प्रसार में हिन्दी पखवाड़ा (1 से 14 सितम्बर 2003) के अवसर पर अयोजित ''हिन्दी दिवस'' में 'सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग' विषय पर एक आशुवाक् प्रतियोगिता आयोजित की गई। कार्यक्रम के अंत में विज्ञान प्रसार के कार्यवाहक निदेशक डॉ. विनय बी. काम्बले ने विजेताओं को पुरस्कार दिए। इस अवसर पर उन्होंने कार्यालय में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए विज्ञान प्रसार के सदस्यों को प्रेरित किया।